वाराणसी संसदीय सीट के पांच और चंदौली के दो विधानसभा क्षेत्रों में 19 मई को होने वाले मतदान के लिए विभिन्न क्षेत्रों से
हो गयीं। हर केंद्र पर मतदानकर्मी शाम तक पहुंच चुके थे। वहां मतदान सामग्री का मिलान किया गया। • हिन्दुस्तान

...कर्ताओं को दिए पोलिंग बैग

पोलिंग बैग के वितरण के लिए सपा के भोजूबीर स्थित केंद्रीय कार्यालय को नोडल सेंटर बनाया गया था। पोलिंग बैग का वितरण सुबह नौ बजे से होना था। पोलिंग एजेंटों की भीड़ पार्टी कार्यालय पर सुबह आठ बजे से ही लग गई थी। कार्यकर्ताओं को पार्टी की ओर से दिए गए पोलिंग बैग में मतदाता सूची, मतदाता पर्ची के साथ ही अन्य आवश्यक सामग्री शामिल है। पोलिंग बैग में कुछ वार्ड प्रभारियों से लगायत विधानसभा क्षेत्र प्रभारी तथा केंद्रीय चुनाव संचालन समिति के प्रमुख सदस्यों के मोबाइल नंबरों की सूची भी है। इसका उद्देश्य यह है कि यदि किसी भी पोलिंग बूथ पर किसी भी प्रकार की गड़बड़ी मिले तो इसकी तत्काल सूचना उपलब्ध कराए गए नंबरों पर पार्टी के जिम्मेवार व्यक्ति को अविलंब मिल जाए।

काशी विद्यापीठ के... मतदाताओं की क...

वाराणसी। लोकसभा चुनाव के लिए रविवार को होने जा रहे मतदान में महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ के 125... छात्रों की ड्यूटी दिव्यांग मित्र के रूप में लगाई गई है। ये सभी राष्ट्रीय सेवा योजना ईकाई के स्वयंसेवक हैं। सभी स्वयंसेवकों को जिला प्रशासन ने शनिवार को परिचय पत्र एवं टोपी...

...त्रों का रिकार्ड तोड़ने का अवसर

...चाने का मौका आज

कम मतदान हुआ तो करीबी रहे नतीजे

वर्ष	लोकसभा सीट	विजयी प्रत्याशी	जीत का अंतर
1951	गाजीपुर ईस्ट	रामनगीना	402
2009	चंदौली	रामकिशुन	459
1967	चंदौली	निहाल	1595
2004	चंदौली	कैलाश नाथ	1669
1962	चंदौली	बालकृष्ण	1785
1980	जौनपुर	अजीजुल्ला	2763
1984	आजमगढ़	संतोष सिंह	2788
1967	गाजीपुर	एस पांडेय	3240
1967	घोसी	जे बहादुर	4288
1991	घोसी	कल्पनाथ राय	4429

2014 में महज चंदौली रहा '...

पूर्वांचल में आखिरी चरण के रण में आठ संसदीय क्षेत्रों में मतदान आज है। इन आठ संसदीय क्षेत्रों में 2014 के चुनाव में केवल चंदौली संसदीय क्षेत्र रहा, जहां मतदान का प्रतिशत 60 फीसदी से पार जा पाया। ऐसे में अन्य संसदीय क्षेत्रों के पास भी इस बार मौका है कि वे अब तक के अपने पुराने रिकॉर्ड धोएं और चंदौली नया रिकॉर्ड बनाये।

यहां के वोटरों से सीखें का...

अब तक के छह चरणों में ऐसे भी संसदीय क्षेत्र रहे, ज... यहां के वोटरों से वाराणसी के मतदाताओं को सीखने... 70.68 फीसदी मतदान हुआ तो छत्तीसगढ़ के श्याम... चरण में असम के नौगांव में 80.58 फीसदी मतदान ह... अप्रैल के तीसरे चरण के चुनाव में असम के घुबड़ी में... चौथे चरण में एमपी के छिंदवाड़ा में 80.53 फीसदी म... पश्चिम बंगाल के उलुबेरिया में 77.57 फीसदी मतदा...

...क्या संभव है हर ... पहले चरण के चुनाव में गढ़वाल का तरसाली गांव के बूथ ... प्रधानमंत्री की...

पिकनिक

और अन्य कहानियाँ

डॉ० श्रीप्रसाद

साहित्य भवन प्रा. लिमिटेड
जीरो रोड, इलाहाबाद

क्रम

□

डॉक्टर वाही को मैं अंकल जी कहती हूँ। उनका पूरा नाम डॉक्टर रमेश चन्द्र वाही है।

अंकल जी हमारेशहर में तीन महीने पहले ही आये हैं। सरकारी अस्पताल में हैं। अच्छा वेतन मिलता है। प्राइवेट दवाखाना भी खोल रखा है। उनकी पत्नी भी इलाज करती हैं। उन्हें मैं आंटी जी कहती हूँ।

अंकल जी के पास बड़ी महँगी कार है। वे कहते हैं कि पूरे शहर में उनकी कार सबसे सुन्दर और सबसे ज़्यादा कीमती है। होगी! देखने में भी ऐसी ही लगती है।

उनके दोनों लड़के संजू और राजे एक अंग्रेजी स्कूल में पढ़ते हैं। एक बड़ी-सी बसं उन्हें लेने आती है।

अंकल जी वास्तव में बहुत धनी हैं। आंटी जी के पास बहुत-से सोने के गहने हैं। साड़ियाँ वगैरह की तो पूछो मत खूब ठाट हैं, अंकल जी, आंटी जी और उनके लड़कों के।

मेरे पापा अंकल जी से बड़े हैं। उनको जिलाधीश हुए सात साल हो गये। कार सरकारी है। भाई, मैं और दीदी की पढ़ाई पर बड़ा खर्च होता है। फिर पापा जी चाचा जी की पढ़ाई पर भी खर्च करते हैं। चाचा जी डाक्टरी पढ़ रहे हैं।

इस तरह हम लोग रहते तो कायदे से हैं, लेकिन रईस नहीं हैं।

डॉक्टर अंकल पड़ोस में ही रहते हैं। वे हमारे घर फुरसत मिलने पर आते हैं। पापा को वे भाई साहब कहते हैं और माँ को भाभी जी।

जब भी अंकल जी घर आते हैं, वे एक बात जरूर कहते हैं—"भाभी जी, मैं तो घर बनवाऊँगा, उसमें दो लाख खर्च होगा। जब घर बनेगा, तो सबसे सुन्दर वही घर होगा।" माँ को और सब बातें अच्छी लगती हैं, पर ये घमण्ड वाली बातें अच्छी नहीं लगतीं।

आंटी जी भी ऐसी ही घमंड भरी बहुत-सी बातें किया करती हैं।

परसों डॉक्टर अंकल घर आये और माँ से बोले, "भाभी जी, कल सभी लोग पिकनिक पर चलेंगे। पहाड़ पर पिकनिक की जायेगी। बड़ा मजा रहेगा। भाई साहब को चलने के लिये मैं मना लूंगा। बच्चे चले ही चलेंगे। बस आप 'हाँ' कह दीजिए।'

माँ ने 'हाँ' कह दी। हालाँकि वे डॉक्टर अंकल जी के साथ पिकनिक पर जाना नहीं चाहती थीं, क्योंकि वे जानती थीं, अंकल जी वहाँ अपनी घमंड भरी बातों से ऊब पैदा करेंगे, पर उनकी बात टाल भी कैसे सकती थीं!

जब हम भाई-बहनों को पिकनिक की बात मालूम हुई, तो हम सब खुश ही हुए। पिताजी भी तयार हो गये। पहाड़ पर जाकर पिकनिक मनाने की बात सचमुच बड़ी अच्छी थी। फिर बरसात के मौसम में जब आसमान में बादल छाये हों, या हलकी फुहार पड़ रही हो, तब पिकनिक पर जाना बहुत अच्छा लगता है।

करीब एक बजे डाक्टर अंकल, आंटी जी और उनके दोनों बच्चे हमारे यहाँ आ गये। उनके साथ उनका कम्पाउंडर भी था, जो उनका सामान लाया था। हम लोग पहले ही तैयार थे।

सामान जीप पर रखा गया। पर जैसे ही ड्राइवर ने जीप स्टार्ट की, एक स्त्री एक आदमी से साथ वहाँ आयी। स्त्री-पुरुष दोनों पहाड़ी थे। पुरुष पेड़ पर लकड़ी लेने के लिए चढ़ा था कि फिसलकर गिर पड़ा। उनका शरीर बुरी तरह छिल गया था। झाड़ियों में उलझ जाने के कारण पिंडलियों में तर-तर खून बह रहा था। उसने डॉक्टर अंकल के पैर छूकर अपनी तकलीफ बतायी और कहा, "डॉक्टर बाबू, मुझे ठीक कर दीजिए। शरीर से इतना खून निकल गया है कि अब मुझसे

चला नहीं जाता।' उस आदमी की स्त्री बराबर रोये जा रही थी। आदमी का पैर और एक हाथ बेहद सूज गया था।

डॉक्टर अंकल ने एक नजर घायल आदमी पर डाली। फिर कहा, "तुम पन्द्रह मिनट बैठो। हम अभी आते हैं। तब तुमको देखेंगे।'

"नहीं अंकल जी, आप लोग देर में आयेंगे। पिकनिक में काफी देर लगेगी। आप अभी देख लीजिए।" मेरी छोटी बहन जया बोली।

"नहीं, नहीं, हम लोग जल्दी आयेंगे तुम यहीं बैठो।" अंकल जी ने जया की बात काटते हुए कहा।

मम्मी, पापा, कम्पाउंडर और हम भाई-बहन असली बात समझ रहे थे। मरीज ने एक बार अपनी पड़ाड़ी बोली में फिर कहा, "अच्छा डॉक्टर बाबू, हम अस्पताल के फाटक पर बैठे हैं। आप पन्द्रह मिनट में जरूर आ जाइएगा, नहीं तो मैं मर जाऊंगा।" उससे मरने की बात सुनकर उसकी स्त्री और जोर से रोने लगी।

जब जीप और कार में हम लोग बैठे, तो जगह कम पड़ने लगी। वास्तव में डॉक्टर अंकल ने कार में तो पापा, मम्मी और आंटी जी के अलावा किसी को बैठने ही नहीं दिया, तब जीप में सब लोग कैसे बैठते ! तभी कम्पाउंडर ने कहा, "साहब, हम फिर कभी पिकनिक पर चलेंगे। जीप में सब लोग नहीं जा पायेंगे।"

कम्पाउंडर ने राकेश भैया से कुछ कहा या नहीं मुझे नहीं पता, पर राकेश भैया बोले, "मैं तो पिकनिक पर बहुत बार गया हूँ। जीप में तो जगह किसी तरह हो सकती है, लेकिन मुझे पढ़ना है। चार दिन बाद ही मेरी परीक्षा है।" फिर हँस कर मेरी ओर इशारा करते हुए उन्होंने कहा, "इस बिल्ली को ले जाइए। यह पहाड़ पर चूहे खायेगी।" भैया ऐसे ही मुझसे मजाक किया करते हैं।

रास्ते में मैंने ड्राइवर से कहा, "डॉक्टर अंकल ने उस बेचारे को नहीं देखा। पन्द्रह मिनट में तो हम लोग पिकनिक की जगह भी नहीं पहुँचेंगे।"

"चुप, चुप, डॉक्टर साहब सुन लेंगे तो नाराज होंगे।' ड्राइवर ने हमें चुप करा दिया।

करीब पच्चीस मिनट में हम लोग पहाड़ पर पिकनिक की जगह पहुँचे। सब लोग कार और जीप से उतरे। डॉक्टर अंकल ने सिगार

सुलगायी और पापा से बोले, "यह जगह बड़ी सुन्दर है। यहाँ कश्मीर का आनन्द आता है।" पापा ने हाँ-हूँ कर दी। शायद वे भी डॉक्टर अंकल के व्यवहार से खुश न थे। मम्मी भी गुमसुम जैसी थीं, पर प्रकट नहीं होने दे रही थीं।

डॉक्टर अंकल, आंटी जी और उनके बच्चे बड़े खुश थे। सिगार खतम होने पर डॉक्टर अंकल बोले, "अरे भाई अब तो पेट में चूहे कूद रहे हैं। जल्दी खाने का सामान निकालो-पूरी, सब्जी, मिठाई, नमकीन और फिर गरमागरम चाय।" चाय आंटी जी थरमस में लायी थीं।

आसमान में उस समय बादल घिरे थे। डॉक्टर अंकल ने ऊपर निगाह करके कहा, "देखिए भाईसाहब, कितना अच्छा मौसम है। हम लोग अच्छे समय से आज चले हैं। आज सचमुच मजा आ गया।"

पर तभी न जाने कैसे मेरे मुँह से निकल गया, "अंकल जी उस मरीज को देख कर चलते, तो कितना अच्छा होता! आधा घंटे से तो ऊपर हो गया। अभी तो हम लोगों को खाना भी खाना है।"

जैसे जलती हुई आग में घी डालने से आग भभकती है या जैसे यकायक कोई झरना [illegible] ता है, उसी तरह डॉक्टर अंकल मम्मी से तड़प कर, पर फिर जरा नरमी से बोले, "भाभी जी, आपकी यह लड़की तो बिल्कुल ईडियट निकल गयी। इसे आपने कोई मैनर नहीं सिखाया।

यह कैसी बेवकूफी की बातें करती है! आपने इसको महात्मा जैसा बना डाला है। इसलिए मैं कहता था कि इसे अंग्रेजी स्कूल में भरती कराइए, जहाँ कुछ मैनर्स सीखे। इसे कोई तौर-तरीका नहीं आता।

डॉक्टर अंकल थोड़ा रुक कर फिर बोल उठे, "अरे, डॉक्टर के पास तो मरीज आया ही करते हैं। इस तरह मरीजों का इलाज करूँ, तो हो चुका। मैं मरीजों के लिए जान नहीं देता। फिर उस देहाती से मुझे एक पैसा भी तो मिलने वाला नहीं था।"

मम्मी यह सब सुन कर मुझे डाँटने लगीं, "बेवकूफ तो है ही। मुझे मालूम होता, तो मैं इसे लाती ही नहीं! अब तो गलती हो ही गयी है। आगे इसे कभी साथ नहीं लाऊँगी।"

बात इतनी बिगड़ जायेगी, मैं नहीं जानती थी, नहीं तो बोलती ही क्यों? मैं रोने-रोने को हो आयी। तब पापा बोले, "जाने दीजिए वाही जी, ना समझ है। छोटी भी है।"

वातावरण कुछ गंभीर हो गया था। मम्मी का चहरा तन गया था। साफ लग रहा था कि उन्हें डॉक्टर अंकल की बातें बिल्कुल पसंद नहीं आयी हैं। पर उन्होंने सह लिया।

पापा के कहने पर मैंने मुँह धोया। फिर सब खाने बैठे। तीन, साढ़े तीन घंटे बाद सब लोग घर वापस लौटे। जब हम लोग उसी जगह पर पहुँचे, जहाँ वे पहाड़ी स्त्री-पुरुष मिले थे, तो पापा ने एक बार चारों ओर नजर दौड़ायी। लेकिन स्त्री-पुरुष दोनों कहीं नहीं थे। फिर इस विषय में किसी ने कुछ कहा नहीं। कोई कुछ कह कर क्यों आफत मोल लेता।

जब घर पहुँचे, तो राकेश भैया आँगन में बैठे पढ़ रहे थे। उन्होंने सबको देखते ही व्यंग्य किया, "क्या मजेदार पिकनिक आज हुई अंकल जी के साथ। अंकल जी के हृदय में तो दया का नाम ही नहीं है। अच्छे डॉक्टर हैं अंकल जी! मरीज को छोड़ दिया और पिकनिक पर चल दिये।"

"अच्छा, अब चुप भी रहेगा। पापा सुन लेंगे, तो अभी तुझे डाँटने लगेंगे।" मम्मी ने भैया को रोकते हुए कहा। फिर बोलीं, "उस मरीज का क्या हुआ?"

"चाहे जो हुआ हो, तुम्हें इससे क्या ?" भैया ने फिर व्यंग्य से ही कहा। पर तभी फिर जरा शांत होकर भैया ने बताया कि उस मरीज के कारण ही वे पिकनिक पर नहीं गये थे और कम्पाउंडर साहब भी इसीलिए पिकनिक पर नहीं गये। भैया बोले, "डॉक्टर अंकल को ऐसी हालत में मरीज को छोड़कर नहीं जाना चाहिए था। हम लोग उसे एक प्राइवेट अस्पताल में ले गये। वहीं उसे भरती करा दिया है, बाजार से कुछ दवाएँ भी ला दी हैं। डॉक्टर परिचित है। वहीं उसका इलाज हो जायेगा। और अब कम्पाउंडर साहब भी डॉक्टर अंकल के अस्पताल में नहीं रहेंगे। वे कह रहे थे—उन्हें दूसरी जगह मिल जायेगी। वे ऐसे डॉक्टर के साथ नहीं रहना चाहते।"

जब भैया अपनी बात कह चुके, तो मम्मी ने मेरी ओर इशारा करते हुए पहाड़ पर घटी सारी बातें बतायीं कि मैंने क्या कह दिया था और डॉक्टर अंकल ने कितनी ऊटपटांग बातें कहीं। भैया यह सुनकर डॉक्टर अंकल पर और नाराज हुए और मुझ पर बहुत खुश होते हुए बोले, "आखिर है तो मेरी ही बहन न !"

रात को खाना खाने के समय पापा के सामने सारी बातें उठीं। डॉक्टर अंकल के व्यवहार की आलोचना पापा ने भी की। भैया के व्यवहार से उन्हें खुशी हुई। उन्होंने कहा, "जब तक ठीक न हो जाये, उस आदमी को देखते रहना।" फिर उन्होंने कहा, "डॉक्टर वाही के व्यवहार की बुराई तो मैंने सुनी थी, पर ऐसे हैं यह आज ही जाना।"

और मेरे मन में अब डॉक्टर अंकल के ऊटपटाँग बोलने का जरा भी दुःख न था। मैं अपने मन में बड़ी प्रसन्न थी।

□

शीशा

पाँच मंजिल की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ा मैं हाँफ गया। अस्पताल की यह नई इमारत बनी है। बताते हैं कि इमारत दस मंजिली बनेगी। तब तो बिना लिफ्ट के कोई जा ही नहीं सकेगा। जब पाँच मंजिल की सीढ़ियों पर दम फूलता है बिना लिफ्ट के।

मैं भी इसलिये गया था कि अहमद के पिता की बात थी। जब शाम को पढ़कर आया, तो अम्मा बोली—"तुझे एक बात मालूम है?"

"क्या?" मैंने पूछा।

"अहमद के अब्बू अस्पताल में भरती हैं," अम्मा ने दु:ख प्रकट करते हुए कहा।

"अहमद के अब्बू अस्पताल में?" मुझे जैसे बिजली का करेंट लगा। सचमुच मैं अहमद के अब्बू को बहुत मानता हूँ। वे बुनकर का काम करते हैं। थोड़े पढ़े-लिखे हैं, पर कविता के बड़े प्रेमी हैं। कबीर और गालिब के बड़े भक्त हैं, बल्कि यों कहना चाहिए कि दोनों पर पागल हैं। दोनों की कविता सुनाते समय इतने गंभीर हो जाते हैं और ऐसे-ऐसे अर्थ निकालते हैं कि आश्चर्य होता है। कहाँ से उन्होंने इतना ज्ञान

पाया ? पर कबीर भी तो बुनकर थे और अनपढ़ भी। उन्हें कहाँ से ज्ञान मिला था ?

ऐसे आदरणीय अब्बू का अस्पताल में भरती होना मेरे लिये दुःख की बात होगी ही। फिर अहमद मेरा जिगरी दोस्त है। खुद अब्बू भी अक्सर कहा करते हैं—"रमेश, तुम मेरे बेटे ही हो। मेरे दो लड़के हैं—अहमद और रमेश।"

मैं इसी से उन्हें अहमद की ही तरह अब्बू कहता हूँ और उनकी बड़ी इज्जत करता हूँ। अम्मा से सूचना मिलने पर जैसे तैसे मैंने रात काटी और सबेरा होते ही अस्पताल पहुँचा।

जब मैं पाँचवीं मंजिल पर कमरे संख्या दो की बेड संख्या सत्रह के पास पहुँचा तो अब्बू आँखें बन्द किए हुए गालिब का ही शेर गुनगुना रहे थे—

न सुनो गर बुरा कहे कोई
न कहो गर बुरा करे कोई
रोक लो गर गलत चले कोई

अब्बू के मन में दर्द था। मैंने उनके पैताने खड़े होकर कहा 'अब्बू जी, प्रणाम।"

"अरे रमेश बेटा!" अब्बू ने तुरन्त आँखें खोल दीं बड़े खुश हुए। "बैठो, बैठो" अहमद उनके पास ही खड़ा था। उन्होंने तुरन्त उसे आदेश दिया—"बेटा, रमेश के बैठने के लिए स्टूल लाओ।

स्टूल आ गया। मैं बैठ गया। अब्बू मेरे सिर पर हाथ फेरने लगे.... "कहो बेटा, कैसे हो ? पंडित जी तो अच्छी तरह हैं।" अब्बू मेरे पिता जी को पंडित जी कहते हैं। "बी० ए० का नतीजा निकल गया। तुम्हारी दीदी की कौन श्रेणी आई ? तुम्हारी पढ़ाई कैसी चल रही है ?" अब्बू ने एक साथ तमाम प्रश्न कर डालें।

"सब लोग ठीक ही हैं। दीदी प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुई हैं और मेरी पढ़ाई ठीक ही चल रही है। पिता जी भी अच्छी तरह हैं," मैंने कहा।

अब्बू तकलीफ में थे। डॉक्टर ने बेड पर से उठने को मना किया था। उनके सिर के काफी हिस्से में पट्टी बँधी थी। पर वे मुझसे बातें ऐसे कर रहे थे, जैसे वे अपने घर में खाट पर लेटे हों और उन्हें कोई

तकलीफ न हो। फिर भी मैंने उनसे उनकी तकलीफ के बारे में पूछा—"अब्बू जी, आपको क्या हुआ? यह चोट कैसे लगी है?"

वास्तव में अम्मा ने यह तो बताया कि अब्बू अस्पताल में भरती हैं, पर क्यों भरती हैं—यह उन्हें मालूम न था।

अहमद अब अब्बू के पैर दबा रहा था और अब्बू बता रहे थे—"बात यह हुई बेटा कि कल मैं अपने गुसलखाने में खड़े होकर नहा रह था। तुम तो जानते ही हो कि कालोनी के पीछे मैदान है। वहाँ लड़के क्रिकेट खेला करते हैं। मुहल्ले में इधर ऊधम भी बढ़ रहा है। सो कुछ लड़के इधर उधर ढेले भी फेंकते हैं। ऐसे ही किसी लड़के ने गुसलखाने में लगे शीशे पर कसकर एक ढेला फेंका। ढेला इतनी ताकत से फेंका गया था कि वह शीशे को फोड़कर मेरे सिर में लगा। में तुरन्त बेहोश होकर वहीं बैठा रह गया। सिर से तर-तर खून बहने लगा। शीशा भी सिर में धँस गया था।

इतना कहकर अब्बू जरा रुके। फिर बोले, "बेटा, मैं तो बुरी तरह चोट खा गया था। शीशे टूटने से जो झनझनाहट हुई तो घर के लोग दौड़ पड़े। पहले तो सबको लगा कि बिल्ली ने सामान गिराया है। उसी की आवाज है। मेरी ओर किसी का ध्यान नहीं था। तभी नन्हा सलीम जोर से चिल्लाया—"अब्बू को चोट लग गई। गुसलखाने का शीशा टूट गया। किसी ने पत्थर मारा है।"

सब लोग गुसलखाने में आये। वहाँ शीशे के छोटे-बड़े टुकड़े पड़े हुए थे। एक पत्थर का बड़ा सा ढेला भी वहीं पड़ा था। बात साफ थी। मैदान की ओर देखा तो वहाँ कोई नहीं था।

अब्बू ने पूरी घटना ज्यों की त्यों बता दी। आगे जो उन्होंने बताया वह यह कि पहले लोग पड़ोस के डॉक्टर जयराम मिश्र के यहाँ ले गये, पर जब उन्होंने तुरन्त अस्पताल ले जाने को कहा तो अब्बू अस्पताल में आ गये।

अस्पताल में उनके फिर से काँच निकाला गया और दवा दी गई। सिर में सात टाँके लगे।

अब्बू को कष्ट कम नहीं था। उन्हें टाँके के कारण एक ही करवट डॉक्टर ने लेटे रहने को कहा था। मैंने सहानुभूति प्रगट करते हुए कहा "अब्बू जी, आपकी तकलीफ देखकर मुझे बड़ा दुख हो रहा है।

बैठे-ठाले यह परेशानी आ गई। जिस लड़के ने ढेला मारा, वह बहुत बुरा है। अगर मिल जाय तो....।'

अब्बू ने बीच ही में टोका—"नहीं बेटा, जो होना था, सो हो गया। चोट लगनी थी, लग गई। झगड़ना ठीक नहीं है। मुहल्ले का ही लड़का है। यदि पता लग जाय तो समझा देना कि वह आगे ऐसा न करे। न जाने उसने किस-किस के घर से ढेले फेंके होंगे और किस-किस को चोट लगी होगी। तीन दिन पहले वर्मा जी के गुसलखाने का भी शीशा टूटा था। लगता है, उसी लड़के ने तोड़ा है। पर उनके यहाँ संयोग से किसी को चोट नहीं लगी।"

जिस समय अब्बू यह सब बता रहे थे, मैं अहमद के बारे में सोच रहा था। अहमद मेरे सामने ही बेड पर था। शायद वह भी अपने बारे में सोच रहा था। इसी से उसके चेहरे पर उदासी थी, शायद वह अपने ऊपर शर्मिंदा था। लोग दूसरों को तकलीफ पहुँचाते रहते हैं। पर जब वही तकलीफ अपने ऊपर आती है, तब अपने किए का पछतावा होता है। शायद यही पछतावा अहमद को हो रहा था, क्योंकि उसका चेहरा ऐसा लग रहा था, जैसे वह बहुत दुःखी हो।

पर हो सकता है, मैं ही उसके चेहरे को देखकर ऐसा अर्थ लगा रहा था क्योंकि मुझे अहमद के किए का ज्ञान था।

मैं एक घंटे तक अब्बू के पास बैठा रहा। इस बीच उन्होंने मुझे एक बड़ा सा संतरा दिया और अपने लिए तथा मेरे और अहमद के लिए चाय मँगवाई। चाय तो मैंने पी ली पर संतरा लेने में मैंने संकोच किया। उस समय उन्होंने मुझे बड़े प्यार से डपटा और जबरदस्ती मेरे हाथ में संतरा रख दिया। मुझे संतरा लेकर खाना पड़ा।

लौटते समय उन्होंने मेरे साथ अहमद को भेजा—"जाओ, अस्पताल के फाटक तक चले जाओ" मैं प्रणाम करके चलने लगा। उन्होंने आशीर्वाद दिया।

हम दोनों जब पाँचों मंजिलों की सीढ़ियाँ उतर कर मैदान में चल रहे थे, तब अहमद बोला—अब तक वह चुप ही था। उसने कहा—"यार, आज अब्बू को चोट लगने पर मुझे बड़ा दुःख हो रहा है।"

"हाँ, चोट बहुत लगी है। जिसने यह काम किया, बड़ा बुरा किया है।" मैंने कहा।

"पर...." अहमद आगे न बोल सका।

"क्या, बोलो न ?" मैं कुछ समझ नहीं पाया।

उसने जैसे साहस करके बताया—"यह गलती मैं भी कई बार कर चुका हूँ। वर्मा जी के गुसलखाने का शीशा मैंने ही तोड़ा है। मेरे ढेले से भी ना जाने किसको कहाँ चोट लगी होगी। रात में दस बजे छत पर से गली में भूल से ढेले फेंके हैं। एक बार तो बड़ा शोर हुआ था, पुलिस भी पता लगाने आयी थी। किन्तु लड़का समझकर मुझसे कोई नहीं बोला।"

"तुम भी यह गलती करते हो ?" मेरे मुँह से यकायक निकल पड़ा। "मैंने तो ऐसा कभी नहीं सोचा था।"

मैं ऐसी बात कह ही गया, नहीं तो मैं इस बात को जानता था। अहमद ने खुद मुझे अपनी यह गलती एक बार बतायी थी, जिसे शायद अब वह भूल गया था।

अहमद को जैसे घोर पश्चाताप हो रहा था—"कोई नहीं सोचेगा कि मैं भी ढेले फेंकता रहा हूँ। यह सब मैंने मनोरंजन के लिये ही किया है, किसी को चोट पहुँचाने के लिए नहीं। पर हो सकता है, किसी को चोट भी लगी हो।"

""अब गलती तो कर ही चुके हो," मैंने समझाया। "पर अब क्या कर सकते हो ? भविष्य में कभी ऐसा मत करना। देखो अब्बू की क्या हालत है ! कहीं और जोर से पत्थर लगता तो बड़ी मुश्किल होती।"

"मैं सच कहता हूँ, अब ऐसा कभी नहीं करूँगा। पर तुम किसी से कहना मत। लोग सोच भी नहीं सकते कि मुझ जैसा भला लगने वाला लड़का ऐसा काम करता।" बड़े दुःख के साथ अहमद ने कहा।

"अरे मुझे पूरा विश्वास है कि तुम ऐसा नहीं करोगे;" मैंने उसे धीरज बँधाया फिर मैंने कहा—"लेकिन वर्मा जी पड़ोसी हैं। और बड़े भले हैं। उनसे तुम्हें माफी माँगनी चाहिए।"

"माँग लूंगा, लेकिन तुम भी मेरे साथ चलो तो," उसने प्रार्थना सी करते हुए कहा।

हम लोग तीसरे दिन वर्मा जी के यहाँ गये। शाम का समय था। वे कुछ पढ़ रहे थे।

"नमस्ते चाचा जी," अहमद ने और फिर मैंने कहा। हम दोनों उन्हें अच्छी तरह जानते थे।

"आओ, आओ, बैठो। कहो, क्या बात है ?" बड़े प्यार से उन्होंने कहा।

हम लोग बैठ गये और तब अहमद ने हकलाते हुए जैसे स्वर में पत्थर फेंकने और शीशा तोड़ने की बात कह दी। अंत में माफी भी माँगी।

सारी बात सुनकर वर्मा जी बोले—"तुम बहुत अच्छे लड़के हो। गलती हो जाती है, पर उसको सुधारना चाहिए। तुम अपने को सुधार लिया, इतना काफी है। लोग तो गलत काम करके अपनी गलती ही नहीं मानते। तुमने खुद मुझे अपनी गलती बता दी, फिर माफी माँगने की जरूरत नहीं।"

इतना कहकर वर्मा जी ने हम दोनों के साथ चाय पी।

जब हम लोग वर्मा जी को प्रणाम करके चले, तो अहमद का मन हल्का हो गया था। उसने बड़ा काम कर डाला था—"टूटा शीशा जोड़ दिया था।"

□

संकल्प
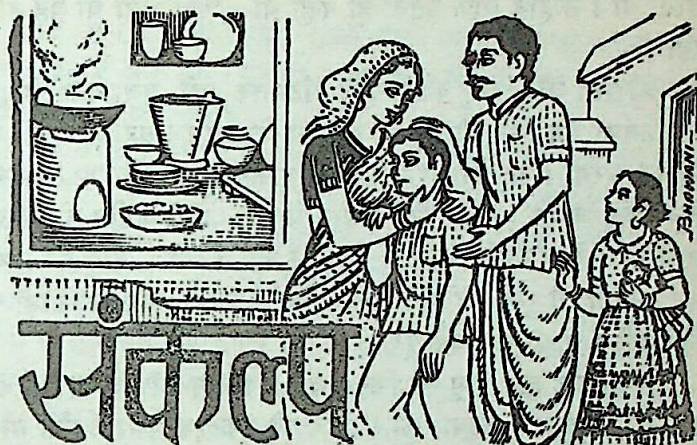
आँगन में ठीक परनाले के नीचे चाचा बैठे हैं। रामू अपने पिता को चाचा कहता है। कोने में रामू खड़ा है। चाचा के चेहरे पर गम्भीरता की काली परत फैली है और रामू के चेहरे पर है उदासी।

चाचा रामू को नहीं देख रहे हैं, सामने दीवार को देख रहे हैं। और रामू क्षणभर चाचा को देखता है, फिर सिर नीचे कर लेता है। चाचा भी चुप हैं, रामू भी चुप है। चौके में खाना बनाती माँ भी चुप हैं। बहन भी चुपचाप खेल रही है। पूरा घर इस समय चुप है, जैसे इस घर में कुछ हो गया है।

यही बात पारसाल भी हुई थी। पर इस साल की घटना पारसाल से ज्यादा असरदार होकर आयी है।

परीक्षा फल तो हाई स्कूल का परसों ही निकल गया था, पर पारना में खबर आज आयी है। गाँव के ग्यारह लड़के परीक्षा में बैठे थे, जिनमें से कुल सात लड़के पास हुए थे। फेल होने वालों में रामू भी था।

फेल होने वाले लड़कों को घर सजा दी गयी। रो-धोकर मामला खत्म हो गया। पर यहाँ कोई किसी को सजा नहीं दे रहा है। इसीलिए सजा और कठोर हो गयी है। रामू के चाचा की आदत बच्चों को प्यार करने की है। सजा वे देते हैं तो अपने को ही। पिछले साल जब रामू फेल हुआ था, तो उस दिन उन्होंने लाख कहने पर भी खाना नहीं

खाया था। उन्होंने सिर्फ इतना ही कहा था—"जो होना था वह होकर रहा।"

और तो और, रामू को उन्होंने डाँटा तक नहीं, सजा देना तो दूर।

उनका मन फिर भी यह सोचता था कि रामू सुधर जायेगा, रामू मेहनत करेगा। वह परीक्षा में उत्तीर्ण होकर नौकरी करेगा तो घर के दिन बदल जायेंगे। सत्रह बीघे जमींन में चार बीघे जमींन तो बिक ही चुकी थी। तेरह बीघे जमींन में जिन्दगी कैसे कटेगी! रामू की नौकरी लग जायेगी तो कुछ खेत और कुछ उसके रेतन से घर की गाड़ी चल निकलेगी। चाचा के सपने पूरे हो जायेंगे।

चाचा एक बार रामू को फिर देखते हैं। रामू काँप जाता है। कैसा बुझा-बुझा चेहरा है चाचा का। चेहरे की एक-एक रेखा में जैसे सौ-सौ पीड़ाएँ बाँध दी गयी हैं। वह सोचता है—चाचा उसे जोर से पीटें, सजा दें, भला-बुरा कहें। कुछ न करें तो माँ से यही कहें, "आज इसे खाना मत देना। इस बार यह फिर फेल हुआ है। इसने तो मुझे बरबाद करके छोड़ दिया। इनको घर से निकाल दो।" पर वे कुछ नहीं कह रहे हैं। कुछ भी नहीं, सिर्फ चुप हैं।

रामू जोर से रो पड़ना चाहता है। वह चाचा के पैरों पर गिर पड़ना चाहता है। चाचा देवता हैं। वह राक्षस है। वह अपने घर का पैसा बरबाद करता है, घर बरबाद करता है। चाचा को उसके प्रति विश्वास है। वह गलती पर गलती करता है, चाचा हर गलती क्षमा करते हैं। चाचा उसके साथ सपने बुनते हैं, वह सपने के तानेबाने को उधेड़ कर फेंक देता है। वह बड़ा नालायक है।

जब उसने आठवाँ दर्जा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण किया था, तब चाचा बड़े खुश हुए थे। उन्होंने कहा था, "बस दो साल की बात और है। हाई स्कूल के बाद कहीं न कहीं तुम्हारी नौकरी लग जायगी। अगर पढ़ने की इच्छा हो तो आगे भी पढ़ सकते हो।"

इस साल उसने पढ़ा ही कितना। आठवें दर्जे तक पढ़ने का संस्कार था मगर फिर ऐसे लड़कों की सोहबत में पड़ा कि उसकी पढ़ाई बिगड़ती ही चली गयी। शुरू में जब वह पढ़ने बैठता, तपेश आते ही कहता, "क्या किताब रट रहा है। उठ ताश हो जाय।" दो-एक बार उसने विरोध किया। पर तपेश, हसन, राजीव और सुधीर सभी तो न पढ़ने

वाले लड़के थे । धीरे-धीरे पढ़ने वाले साथी हटते गये और ये साथी उसके जीवन में आते गये । उसकी आदत बदलती गयी और इसका फल मिला परीक्षा में असफलता ।

पिछले साल फेल होने पर घर में हंगामा नहीं मचा था, पर रामू के मन में तो हंगामा मचा था । उसने इनका साथ छोड़ने का संकल्प किया था । जुलाई भर उनसे कटा-कटा रहा, पर धीरे-धीरे वही साथी फिर जुट गये । रामू फिर ज्यों का त्यों हो गया ।

अपने बिगड़ने की एक-एक तस्वीर रामू के सामने नाच रही थी । साथियों के साथ अध्यापक पर ढेला चलाने की तस्वीर भी इसके साथ है । प्रधानाचार्य जी द्वारा समझाया जाना, शिकायत आने पर माँ द्वारा डाँटा जाना और चाचा का हिन्दी अध्यापक से जाकर माँफी माँगना आदि तमाम तस्वीरें उसकी आँखों के सामने घूम रही हैं ।

तभी अँधेरे में रोशनी की तरह रामू के मन में जैसे कुछ कौंधता है । वह सोचता है, "मैंने गलतियाँ तो बहुत की हैं, पर क्या कोई अच्छा काम नहीं कर सकता ? अपने खराब साथियों को छोड़कर क्या अच्छे साथियों—हरि, मनोहर, और इकबाल के साथ नहीं रह सकता, जो मेरा भला चाहते हैं ! मैं सब कुछ कर सकता हूँ । बुरा बना हूँ तो अच्छा बन सकता हूँ ।"

सोचते-सोचते रामू की आँखों से आँसुओं की धार फूट पड़ती है । पह चीख मार कर रो पड़ता है । चाचा दौड़कर उसके पास आते हैं । माँ चौके से भागी आती है और उसे सीने से चिपका लेती है । रामू रो-रो कर कहता है, "चाचा अब मैं पढ़ूंगा । मैं मेहनत करूँगा । मेरा नाम स्कूल से मत कटाना । इस बार मैं जरूर पास हो जाऊँगा ।"

माँ की आँखें आँसुओं से भर जाती हैं और चाचा की भी, "तुम पढ़ो बेटा, नाम नहीं कटायेंगे । हम यही तो चाहते हैं कि तुम मेहनत से पढ़ो ।"

अब रामू के संकल्प को कोई तोड़ नहीं सकता । बड़ा कठोर संकल्प है ।

धीरे-धीरे उसका मन हलका हो जाता है । माँ चाचा से कहती है, "चलो खाना खाओ ।" रामू से भी कहती है, "तुम भी खाओ, नहीं तो चाचा नहीं खायेंगे ।"

रामू और चाचा खाना खाने के लिए हाथ धो रहे हैं । माँ चौके में दो थालियों में खाना लगा रही है । □
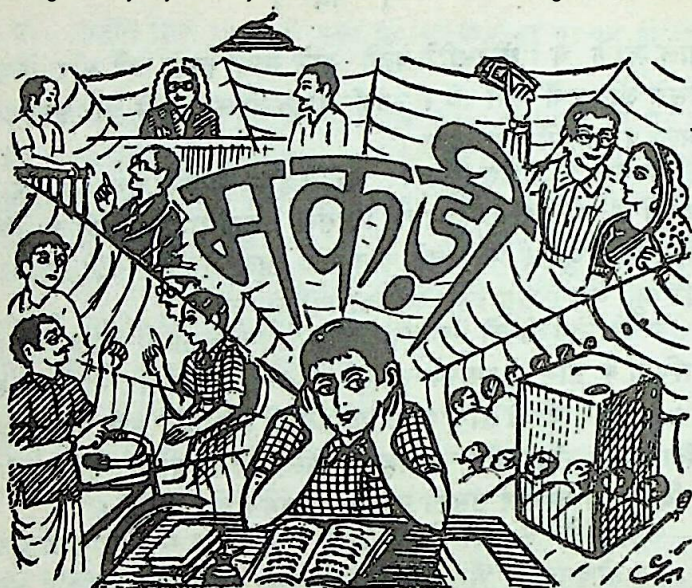
शाम का समय था। सात बजा था। सात से नौ बजे तक सतीश के पढ़ने का समय है। सुबह भी वह छः से साढ़े आठ तक रोज पढ़ता है। कालेज की पढ़ाई और फिर घर पर अध्ययन। इस प्रकार सतीश पढ़ने में काफी अच्छा है। उत्तर प्रदेश में हाई स्कूल की परीक्षा में उसे प्रथम श्रेणी और चौथा स्थान मिला था।

पढ़ने में वह जितना अच्छा है, उतना ही नम्र भी है। कोई नहीं कह सकता कि कभी उसने किसी का अपमान किया हो या कभी किसी को कड़ुवी बात कही हो। अध्यापक उसे पढ़ाकर अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। ऐसा योग्य और ऐसा नम्र छात्र जल्दी नहीं मिलता।

शाम को पढ़ने के लिए बैठने के पहले वह अपने साथियों के साथ खेलता भी है। और तब दो घंटा जमकर पढ़ता है।

लेकिन आज सतीश का चित्त पढ़ाई में नहीं लग रहा है। उसने गणित लगाया। मन नहीं लगा। फिर अंग्रेजी का अनुवाद करने बैठा। तब भी मन नहीं लगा। इसके बाद उसने हिन्दी व्याख्या करनी चाही। हिन्दी के अध्यापक ने व्याख्या लिखने को दी थी, उसमें भी जी नहीं लगा। जब भी वह कुछ करने बैठा, साइकिल वाले का एक वाक्य उसे याद आ गया—"जा जा, नहीं तो झापड़ खा जायेगा।"

उसने कोई अन्याय नहीं किया था। बात इतनी ही थी कि वह रिक्शे पर बैठा मैंदागिन जा रहा था। उसी रिक्शे पर एक और आदमी बैठा था। सरकारी अस्पताल के सामने जब रिक्शा पहुँचा तो दुर्घटना हो गयी। रिक्शे के पीछे जो एक आदमी साइकिल लेकर चल रहा था, उसने रिक्शे की बगल से साइकिल निकाल कर आगे जाने की कोशिश की। उसी समय सामने से एक आटोरिक्शा आ गया। साइकिलवाला बीच में फँस गया और उसकी साइकिल का एक पहिया दबकर टेढ़ा हो गया। आटोरिक्शा वाला दो मिनट रुका और भीड़ बढ़ती देख चालाकी से अपना आटोरिक्शा ले भागा। साइकिल वाला उस समय रिक्शेवाले से उलझ रहा था। पर जब सतीश ने कहा--"गलती तो आपकी है कि सामने का आटोरिक्शा न देखकर आपने आगे निकलने की कोशिश की। दूसरी गलती आटोरिक्शा वाले की है कि उसने ठीक से ब्रेक नहीं लगाया। और आपकी साइकिल तोड़ दी। इस बेचारे रिक्शेवाले की कोई गलती नहीं है।"

"गलती क्यों नहीं है? अगर यह अपना रिक्शा बायीं ओर कर लेता तो साइकिल न टूटती। अब मैं इससे पचास रुपये लूँगा। मुझे पहिया बदलवाना पड़ेगा।" यह कहकर उसने रिक्शेवाले को गाली भी दी और कई झापड़ भी मारे। सतीश जोर से चिल्लाकर इसका विरोध करने लगा। सतीश की बात का समर्थन उसके साथ रिक्शे पर बैठे आदमी ने भी किया। अन्य लोग भी उसकी हाँ में हाँ मिलाने लगे। इस पर साइकिल वाला जरा नम्र पड़ा और रिक्शेवाले से बोला—मेरी साइकिल रिक्शे पर रखकर बेनिया चलो। वहाँ ठीक कराऊँगा।"

सतीश ने रिक्शा छोड़ दिया और साइकिल वाले से कहा—"रिक्शा-वाला गरीब है, उससे रुपये मत लीजिएगा।"

सतीश का इतना कहना था कि वह आदमी फिर गुस्से में आ गया। वह तड़पा—"जा, जा बड़ा उपदेश दे रहा है। बहुत बोलेगा तो झापड़ खा जायेगा।"

बड़ी अपमानजनक बात थी। पर सतीश क्या करता? लड़का जो ठहरा। पढ़ने के समय यही अपमान उसे कचोट रहा था। वह यह नहीं समझ पा रहा था कि आखिर उसने गलती क्या की? अन्याय रिक्शेवाले का था अथवा आटोरिक्शा वाले का था? पर अपमान

रिक्शेवाले का हुआ, और उसी ने मार खायी चूँकि उसने न्याय का साथ दिया, इसलिए उसका भी असम्मान हुआ। उस समय वह चुप भी रह सकता था। पर उसने न्याय का पक्ष लेना ही ठीक समझा। फिर रिक्शावाला बड़ा गरीब भी था।

सतीश को और भी बातें याद आयीं। पिछले साल पड़ोस के रामकृष्ण और शंकरलाल में नाली को लेकर झगड़ा हुआ। रामकृष्ण शंकरलाल के दरवाजे के सामने खुली नाली निकाल रहे थे। निश्चित था कि नाली निकलती तो बदबू फैलती। जब शंकरलाल ने विरोध किया तो रामकृष्ण लड़ गये। शंकरलाल को काफी चोट आयी। थाने में दोनों ओर से रपट हुई। लेकिन जब मुकदमा चला तो शंकरलाल मुकदमा हार गये। रामकृष्ण की जीत हुई। शंकरलाल पर जुर्माना हुआ और उन्हें एक हफ्ता जेल में भी रहना पड़ा। सतीश को इस बात पर आश्चर्य हुआ कि न्यायालय में भी न्याय नहीं किया जाता। न्याय की जगह पर भी अन्याय ही होता है।

कैसे हैं लोग! अच्छे लोग कौन हैं? वह या तो अपने घर के लोगों को जानता है या कालेज के लोगों को। तो क्या ये लोग भी अन्याय करते होंगे। ये लोग भी कहीं न कहीं किसी को दुःख पहुँचाते होंगे? और तभी उसे याद आयी हफ्ते भर पहले की एक बात। उसके छोटे काका आये थे। वे उसकी माँ से कहने लगे—"भाभीजी, आज मुझे एक हजार रुपये का फायदा हुआ।"

कैसे?" माँ ने पूछा।

"डीजल का कोटा मिला था। सब ब्लैक में निकाल दिया। एक हजार से ज्यादा का फायदा हुआ। अगली बार और ज्यादा की उम्मीद है।" काका ने बताया।

"पर डीजल तो तुमको दूसरों को देने के लिए मिला था, वे क्या करेंगे?" माँ ने सरल भाव से पूछा।

"वे भाड़ झोकेंगे। मेरा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता जमींदार साहब का भी इसमें हिस्सा है। कोई बोलेगा तो उसकी खैर नहीं।" चाचा हँसकर बोले।

माँ को ये बातें अच्छी नहीं लगीं। वे चौके में जाकर चाय बनाने लगीं।

सतीश पढ़ना बन्द कर आज यही सब सोच रहा है। दुनिया में जैसे अन्याय का बोलबाला हो गया है। दूसरे लोग भी अन्याय करते हैं, अपने लोग भी अन्याय करते हैं। कृष्ण चौधरी तेल मिल का कड़ुवा तेल कितने लोगों के लिए मुसीबत बन गया। कम से कम बीस लोग मरे पचासों बीमार पड़े। जब जाँच हुई तो मिल मालिक पकड़ा गया। लेकिन दो ही दिन में वह जेल से घर आ गया। पर जिन बीस लोगों की जानें गयीं, उनके लिए कुछ नहीं हुआ। बीस घर बर्बाद हुए। एक दिन अखबार में छपा, दूसरे दिन सब लोग भूल भी गये।

सतीश के दिमाग में ऐसी बातें आ रही हैं। इन्हीं को सोचते-सोचते उसे दिनकर जी की कविता की कुछ पंक्तियाँ याद आ गयीं—

"हम अखिल सृष्टि के रत्नमुकुट
हम मानव, हम करुणानिधान,
सब हँसी खुशी, लुट गयी
रुदन ही पड़ा हमारे भाग्य आन,
कैसी रचना, कैसा विधान।"

मकड़ी के जाल की तरह सतीश का मन बातें सोच रहा है। जैसे मकड़ी जाल बुनती रहती है और बुनते-बुनते थक जाती है, उसी प्रकार उसका मन भी थक गया है। उसने मेज पर अपना सिर रख दिया। उसे झपकी लग गयी और जो कुछ उसने चेतन अवस्था में सोचा था, उसी का वह सपना देखने लगा।

"सतीश, सतीश ! क्या बात है।" सतीश के पापा ने सतीश का सिर हिलाकर जगाया। "उठो नौ बज गया।"

घड़ी में सचमुच नौ बज चुका था। सतीश ने न जाने क्या-क्या सोचा था। वह भारी मन से उठा। हाथ मुँह धोकर खाना खाया और और पलंग पर लेट गया। यद्यपि उस का मन उदास था, फिर भी वह यह सोचता हुआ सो गया कि आखिर यह समय बदलेगा जरूर— क्योंकि ये अच्छी बातें नहीं हैं। उस समय इस तरह की बातें नहीं होंगी और न ऐसा अन्याय ही होगा।

छत पर कई कपड़े पड़े हुए थे कपड़ों में थे फ्राक, बुश्शर्ट, पैंट, कमीज और रूमाल। सभी नए कपड़े थे और सभी सुन्दर। सभी कपड़े बड़े कीमती भी थे।

पहले पहल घर के एक लड़के ने इन कपड़ों को छत पर पड़े हुए देखा। कपड़े अपने घर के न थे, किसी दूसरे ही घर के थे। लड़के को इतने सुन्दर और इतने सारे कपड़े देखकर अचम्भा हुआ।

नीचे आकर उसने अपनी माँ को बताया। उसकी माँ को शंका हुई। भला, नए, सुन्दर और कीमती कपड़े छत पर कहाँ से आए? उसे भय भी लगा।

धीरे-धीरे बात पूरे घर में फैल गयी। मेरा घर काफी बड़ा है। उसमें कई परिवार रहते हैं। पूरे घर के लिए यह एक अच्छा खासा रहस्यमय तमाशा हो गया। दौड़े-दौड़े सब लोग छत पर पहुँचे। वहाँ सचमुच कई कपड़े पड़े हुए थे और पास ही में एक झोला भी पड़ा था। लगता था, सारे कपड़े धोये गये हैं। फिर इस्तरी करने के लिए झोले में भर कर उन्हें रखा गया है। और वही कपड़े यहाँ बिखेर दिये गये हैं।

विचार होने लगा, ये कपड़े किसके हैं और यहाँ कैसे आये ? जिस लड़के ने इन कपड़ों को देखा था, उसकी माँ तो पहले से ही शंकित व भयभीत थी दूसरों ने भी भय की ही आशंका की, आखिर कोई किसी की छत पर अपने नये, सुन्दर कपड़े क्यों फेंक देगा। कुछ तो रहस्य होना ही चाहिए। वह रहस्य क्या हो सकता है, सिवा इसके कि कोई भूत ही कपड़े फेंक गया हो।

और इस बात को पुष्ट कर दिया दादीजी ने। दादीजी बाजार से आई थीं। उन्होंने सबको छत पर देखा तो कौतूहलवश वह भी आ गईं। दादीजी घर में बहुत ज्ञानी-ध्यानी मानी जाती हैं। भूत-प्रेत में विश्वास करने वाले घर के सब लोग उनकी बात मानते हैं। दादीजी ने देखते ही कहा, "ये सारे कपड़े भूत लाया है। इन्हें कोई छूना मत। रात को अब कोई छत पर भी न सोए।"

सचमुच रात को कोई छत पर सोने न गया।

दादीजी ने आगे बताया, ये कपड़े पड़ोस के घर के हैं।"

कपड़े वाकई पड़ोस के ही थे। पड़ोस के घर के सम्बन्ध में जो कहानी दादीजी ने सुनाई, उससे भूत की बात सबकी समझ में आ गई।

कहानी यह थी पड़ोस के मकान को कई कारीगरों ने मिलकर बनाया था। उन कारीगरों का सरदार अत्यन्त होशियार व सज्जन आदमी था। वह काम करता रहा, करता रहा। पर जब उसे मजदूरी देने का समय आया तो जिनका मकान था उन्होंने उसे बड़ा धोखा दिया। उन्होंने उसकी मजदूरी नहीं दी, कारीगर तड़प कर मर गया।

दादीजी ने आगे बताया—"मरते समय उस कारीगर ने यह कहा था कि यह भूत बनकर मकान मालिक को परेशान करेगा।

दादीजी ने उँगली नचाकर फिर कहा, "वही भूत उनके घर से कपड़े उठाकर लाया है और उसने छत पर कपड़े बिखेर दिये हैं।"

उन्होंने इसके पहले की भी घटनाएँ बताईं कि किस प्रकार भूत ने उस घर के बरतन गली में फेंक दिये, दीवाल-घड़ी कुएँ में डाल दी और कागज की फाइलें कहीं गायब कर दीं।

बड़ी बूढ़ी दादीजी की बात को भला कौन काटता।

उन कपड़ों को उठाकर पड़ोसी के यहाँ कौन ले जाये, यह समस्या थी। सम्भव है, भूत किसी कमीज की जेब में बैठा हो या किसी बुश्शर्ट का बटन बन गया हो।

साहस करके एक सज्जन ने वे कपड़े उठाये, झोले में भरे और उन्हें देने के लिए पड़ोसी के यहाँ गये।

मैं इस बात की जानकारी लेने के लिए पहले से ही उत्सुक था कि पड़ोसी अपने कपड़े के गायब होने का क्या कारण बताते हैं।

पड़ोसी महोदय ने अपने कपड़े लेकर धन्यवाद दिया। सारे खोये हुए कपड़े पाकर वह बहुत खुश हुए। कपड़ों के गायब होने का उन्होंने वही कारण बताया, जिसका मुझे विश्वास था। उन्होंने बताया—"एक बंदर परेशान बहुत कर रहा है। अक्सर वह घर की चीजें उठा ले जाता है। कपड़े धो सुखा कर इस्तिरी करने के लिए झोले में भर कर रख दिए गए थे। वही बंदर झोला उठाकर ले गया होगा! आपने बड़ी कृपा की जो कपड़े पहुँचा दिए, नहीं तो मैं तो कपड़े खो ही चुका था।"

पुराने लोग भूत-प्रेत में विश्वास करने के कारण तमाम घटनाओं को भूत-प्रेत से जोड़ने लगते हैं। यही हालत हमारी दादीजी की है। जब मैंने बंदर की यह करामात सबको बताई तो सब दादीजी की बुद्धि पर हँसने लगे। सब ने मेरी बात का विश्वास भी कर लिया। पर दादीजी को मेरी बात पर फिर भी विश्वास नहीं हुआ। वह यही कहती रहीं, "कपड़े भूत लाया है, बंदर नहीं।"

पर दादीजी की इस बात को माना किसी ने नहीं।

बोवा की कहानी बड़ी लम्बी है। आखिर बोवा की उम्र भी तो पचहत्तर वर्ष है। तब कहानी लम्बी होगी ही। उम्र के लिहाज से हम सब बच्चे बोवा को बोवा दादा कहते हैं। बोवा ने मेरे पिताजी को गोद में खिलाया है, ताऊजी को गोद में खिलाया है और काका को भी गोद में खिलाया है।

लेकिन पचहत्तर की उम्र में भी बोवा दादा के काम देख कर दंग रह जाना पड़ता है। बोवा दादा सवेरे सबसे पहले जागते हैं। बैलों की सानी पानी करते हैं। पिताजी छः बजे जागते हैं। जल्दी-जल्दी कुल्ला मंजन करके जब पिताजी तैयार होते हैं, तब तक बोवा खेत जोत चुकते हैं। तब पिताजी जोतते हैं।

फिर बोवा घर पर का पानी भरते हैं। तीस पेंतीस गगरे पानी तो खींचते ही होंगे। चबूतरा, दरवाजा, और सामने के मैदान की सफाई करके बोवा नहाते हैं।

तब वे खाना खाते हैं। बिना नहाए उन्होंने कभी खाना खाया हो ऐसा मुझे याद नहीं।

खाना खाने के बाद पिता जी के नियम के अनुसार बोवा दादा के आधे दिन के काम पूरे हो जाते हैं और इसके बाद वे आराम कर सकते हैं या सो सकते हैं। पर वे ऐसा नहीं करते। किसान के घर में चौबीस घण्टे कुछ न कुछ काम रहता ही है। भैंस या गाय पर धूप आ रही है

तो उसे छाया में बाँधना या जाड़े के दिन हैं तो इन जानवरों को धूप में बाँधना या बैलों के लिए नाथ और पगहे बनाना—यह भी काम ही है। बोवा कम से कम दो घण्टे यही काम करते हैं। तब वे सोते हैं—डेढ़-दो बजे से चार बजे तक।

चार बजे तक फिर पानी की जरूरत। जानवरों का चारा-सानी। घर का धूल धक्कड़ झाड़ना। शाम होती जाती हैं, काम बढ़ते जाते हैं। बोवा दादा कम से कम आठ बजे तक काम में लगे रहते हैं। घरेलू कामों में गोदी के बच्चों को खिलाना भी शामिल है। बच्चों को वे बड़े कायदे से खिलाते हैं। उनकी गोदी में जाने पर बच्चे चुप हो जाते हैं।

जब से मैंने होश सम्हाला है, तबसे बोवा दादा का यही नियम देखता आ रहा हूँ। मेरी उमर पन्द्रह बरस की हो गई। पिताजी कहते हैं कि बोवा उनके बचपन से ऐसे काम करते आ रहे हैं। न वे कभी बीमार पड़े, न बुखार आया और न कहीं गए और न उनका कभी यह नियम टूटा। एक आध दिन कभी ऐसा हो तो पिताजी को याद नहीं।

बोवा दादा बिलकुल अकेले हैं। ऐसे वे अकेले नहीं हैं। हमारे घर के आदरणीय सदस्य हैं और हम सबके दादा हैं। फिर भी अब उनका कहीं कोई घर-द्वार नहीं है। यदि घर-द्वार होगा भी तो वे कभी वहाँ जाते नहीं और हम लोग इस विषय में कुछ जानते नहीं। बचपन से हम सबको बोवा दादा कहना सिखाया गया और हम लोग आदर पूर्वक यही कहते आ रहे हैं। पिताजी तथा दादा उन्हें बोवा कहते हैं।

आज हम लोगों में और बोवा दादा की उमर में जमीन-आसमान का अन्तर है। दादी बताती हैं कि हमारे घर में बोवा दादा तब आए, जब पिताजी की उमर करीब पाँच छै साल की थी। घर में एक ऐसे आदमी-की जरूरत थी जो पानी भर दे, झाड़ू लगा दे और बैलों की सानी पानी कर दे।

दादा ने यह बात किसी को बताई और दूसरे ही दिन सोलह-सत्रह बरस का एक लड़का घर में नौकरी करने आ गया।

बोवा दादा जाति के बारी थे और गरीब घर के थे। बारी ब्याह शादी में पत्तलें बनाकर लाते हैं। खाली समय में मेहनत मजदूरी करते हैं। जो महाशय बोवा दादा को लाए थे, उन्होंने दादाजी से कहा था—

"पाठकपुरा के मनई बारी का यह लड़का है। खाना-कपड़ा और चार रुपया महीना देना होगा। गूंगा है, पर काम मेहनत से करेगा बड़ा ईमान्दार है।"

दादी ने बताया था—"सचमुच में लड़का ऐसा ही था। छै महीने में ही उसने सबका हृदय जीत लिया। उसको लाने वाले महाशय भी लड़के के बारे कुछ नहीं जानते थे। घर ले आने पर वह इतना गुणी सिद्ध हुआ कि पूरा घर किसी न किसी रूप में उस पर निर्भर हो गया।"

"बोवा ने कुछ दिन घर में उदासी का अनुभव किया। बाद में वे सबके साथ घुलमिल गये और खुश दिखाई देने लगे। गूंगे होने के कारण बोवा हर बात संकेत से करते। दादा के विषय में कुछ कहना होता तो मूंछ ऐंठने का इशारा करके बात करते। पिताजी छोटे थे, इसलिए जमीन से ऊपर हाथ करके बात करते और बुआ पढ़ रही थीं इसलिए उनके विषय में हाथ पर लिखने का इशारा करके बात करते थे। बोवा के इशारों को धीरे-धीरे सब समझने लगे। इन इशारों में से कुछ का आविष्कार बोवा ने किया था और कुछ दादा ने। कभी-कभी वे बोल पड़ते। तब उनके मुंह से 'बो' 'बो' की आवाज निकलती। इसी आधार पर उनका नाम 'बोवा' पड़ गया।" फिर तो सभी कहने लगे—"जाओ, बोवा से कह दो। बोवा को जरा बुलाओ। बोवा पानी भर लाओ आदि।"

पहले अपने घर में, फिर सारे गाँव में बोवा नाम चल पड़ा।

बोवा दादा के बारे में सारी जानकारी दादी से ही मिली है। धीरे-धीरे बोवा दादा हमारे घर में इस तरह घुलमिल गए कि न वे अपने घर गए, न उनके घर से कभी किसी ने उनकी खोज खबर ली। बोवा दादा अपने घर को भूल गए, उनके घर वाले बोवा दादा को। जहाँ प्यार है, वहीं घर है। हम लोगों का घर ही बोवा दादा का घर हो गया।

बोवा दादा के आने के साल भर बाद ताऊ जी की शादी हुई। बोवा दादा ने बड़ा काम किया। वे बारात में भी गए। वहाँ भी बड़ा काम किया। ताई जी के पिता उनके व्यवहार से इतने खुश हुए कि

विदाई के समय एक धोती और दो रुपये दिये तथा गले मिले। उस समय बोवा दादा की आँखों में आँसू आ गए।

एक आध बार बोवा दादा ताई जी को विदा भी कराके लाए। ताई जी उन्हें इतना अधिक मानती थी कि बोवा दादा को खिलाकर ही खाना खातीं।
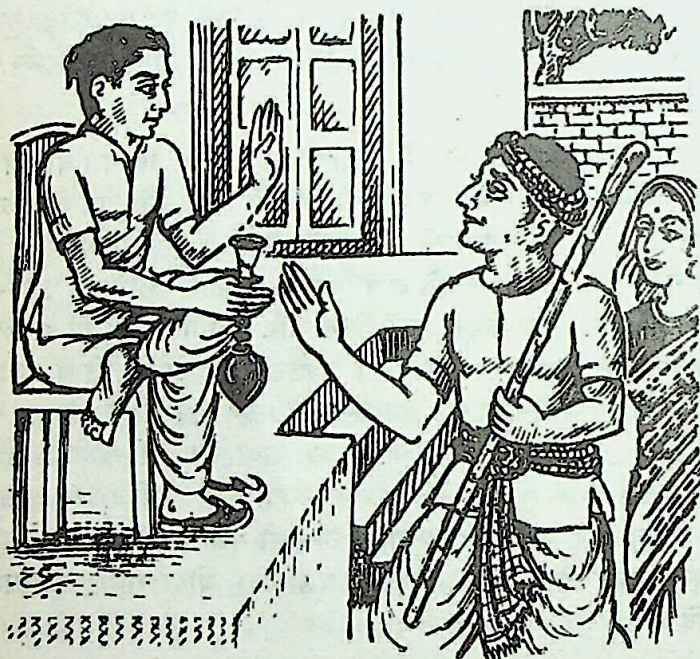
दिन बीत रहे थे। घर में सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था। बोवा दादा अब एक भरे-पूरे युवक थे। सिर्फ उन्हें जबान नहीं थी; बाकी वे कुछ साँवले से गठीले शरीर में बड़े अच्छे लगते थे। सिर पर गमछा, आधी बाँह का छोटा कुरता और घुटने तक की धोती पहन कर और हाथ में भारी सी लाठी लेकर जब वे चलते तो देखने वाले सराहना किए बिना न रहते। स्त्री हो या पुरुष, सबके मुँह से एक ही बात निकलती—"भगवान् ने सब कुछ दिया, एक जबान नहीं दी, नहीं तो बोवा की आज दस आदमियों में गिनती होती।"

उनके गठीले शरीर के साथ उनकी भारी लाठी भी खूब फबती थी। लाठी वे अक्सर अपने पास रखते। अपनी मोटी बड़ी लाठी से

एक बार भागते चोर की एक ही वार में टाँग खतम कर दी थी। चोर की हमेशा के लिए एक टाँग चली गयी और उसे अपना चोरी का धंधा छोड़कर मूंगफली घूम-घूम कर बेचनी पड़ी। दो एक लोगों ने भले ही कहा कि बोवा ने बुरा किया, पर ज्यादातर लोगों ने बोवा दादा की प्रशंसा ही की। चोर ने भी बोवा दादा के खिलाफ कभी कोई कार्यवाही नहीं की।

बीता हुआ समय बहुत छोटा और साधारण लगता है, पर जब समय बीत रहा होता है, उस समय साधारण नहीं होता। हर क्षण, हर घण्टे या हर दिन कोई न कोई महत्वपूर्ण बात होती ही रहती है।

बोवा दादा का बीता हुआ समय भी अब ऐसे ही साधारण लगता है। पर गूंगे बोवा दादा के जीवन में बहुत कुछ घटा है दादी उनके जीवन की घटनाओं को हँस-हँस कर और उन्हीं की आवाज में नक़ल करके बताती हैं। लेकिन उन घटनाओं को गहराई से सोचने पर लगता है कि जैसे बोवा दादा के जीवन में भी भावनाओं के समुद्र ने हिलोरें ली थीं। बोवा दादा की समझ और हृदय किसी अन्य व्यक्ति से कम नहीं था।

दादी की ही बताई हुई घटना है। "बोवा दादा तब छब्बीस-सत्ताईस के हो रहे थे। बड़ी बुआ की शादी थी। शादी पक्की हो गई। आगरा से बारात आने को थी। घर की छुआई-पुताई हो रही थी। सर-सामान आ रहा था। सुनार दादा और दादी जी को दिखाने के लिए कुछ गहने लाया था। शादी में सिर्फ पन्द्रह दिन बाकी थे। दादी ने बताया—बोवा इस समय काम तो सब कर रहे थे, पर जो उत्साह उन्होंने ताऊ जी की शादी में दिखाया था, वह उत्साह इस समय नहीं था। कभी-कभी उनके चेहरे पर उदासी भी दिखाई देती थी। पर गूंगा तो गूंगा अपनी बात कहे कैसे। फिर सबसे ज्यादा उसके हृदय की बात समझते थे दादा। वे अपनी व्यस्तता में बोवा की ओर ध्यान ही नहीं दे पा रहे थे।"

दादी ने हंस-हँसकर बताया—इसी समय एक दिन बोवा लाठी लेकर दादा के पास पहुँचे और क्रोध प्रकट करते हुए उन्होंने कहा—"आप अपनी लड़की की शादी तो कर रहे हैं, पर मैं इतना बड़ा हो गया, मेरी शादी कब होगी ? जब मैं बिल्कुल बुड्ढा हो जाऊंगा, क्या

तब मेरी शादी होगी या मेरी शादी होगी ही नहीं ?" फिर उसने लाठी को हाथ में कसकर लेते हुए कहा—"पहले मेरी शादी करिए, नहीं तो मैं यह शादी नहीं होने दूँगा।"

दादा उसके मन की पीड़ा समझ गए। उन्होंने अब तक सोचा ही नहीं था कि वह भी अब उनका एक पाला हुआ लड़का है, जिसकी ओर वे देख ही नहीं रहे हैं। गूँगा होने के कारण ही वे उसकी उपेक्षा कर रहे हैं।

उन्होंने बोवा को सान्त्वना दी। बोवा का चित्त शांत हुआ। और फिर उन्होंने दादी जी से राय की और बोवा के लायक अनाथालय से एक लड़की खोजी। बड़ी बुआ की शादी के काम चारों ओर फैले हुए थे, पर दादा जी ने फिर भी बोवा की शादी करवाई। बोवा अपनी शादी से बड़ा प्रसन्न हुआ।

दादी ने बताया—"बुआ की शादी हुई, वह अपनी ससुराल गई, बोवा अपनी स्त्री के साथ रहने लगा। बोवा अपनी स्त्री को बहुत मानता।"

समय फिर अपने ढंग से गुजरने लगा, जिसमें कहीं कोई बात नहीं थी। पर जिंदगी की लकीर हमेशा सीधी नहीं चलती, आड़ी-तिरछी भी हो जाती है। सब कुछ ठीक-ठाक होते हुए भी बोवा दादा की स्त्री बीमार पड़ीं। साधारण बुखार से रोग बढ़ने लगा। अन्त में उन्हें अस्पताल में भरती किया गया। बोवा दादा तो बेचारे बोवा ही थे, अपनी बात डॉक्टर या नर्स से कह नहीं सकते थे, पर उनके मन में स्त्री के बीमार होने का बड़ा दुःख था। दादाजी दवा का खर्च कर रहे थे। डॉक्टर और नर्सें भी अपने काम में कोई कमी नहीं रख रहे थें।

एक महीने तक बोवा दादा की स्त्री अस्पताल में भरती रहीं। वे सूखकर काँटा हो गईं थीं। रोग ठीक न हुआ और वे चल बसीं।

यह बड़ा दुःखद अवसर था। बोवा दादा को भी बड़ा दुःख हुआ था। पर उन्होंने अपना दुःख क्रोध के रूप में प्रकट किया। स्त्री के मरते ही उन्होंने "बौओ औ" करते हुए कस डॉक्टर का हाथ पकड़ लिया। उनके कहने का मतलब यह था—"तुमने यह क्या कर डाला। मेरी औरत चल बसी।"

उन्होंने "बौओ" की आवाज में नर्स को भी डपटा। वह डर कर हट गई कि कहीं यह गूँगा मार न दे।

बोवा दादा की भावना को बड़ी ठेंस लगी। दो दिन तक कमरे में पड़े रहे। खाना नहीं खाया धीरे-धीरे दादा जी के समझाने बुझाने पर उनका मन कुछ बदला। वास्तव में बोवा की भावनाओं का महल ढह गया था। उनके जीवन में एक प्रकार का खोखलापन आ गया था।

समय हर घाव को भर देता है—चाहे वह शारीरिक हो, चाहे मानसिक। धीरे-धीरे बोवा का स्वभाव फिर ठीक हुआ। पर एक परिवर्तन खासतौर से आया। बोवा की बच्चों के प्रति रुचि बहुत बढ़ गई। खाली समय में बच्चों को लेकर रहना, उनके लिये कभी गुब्बारे, कभी कोई बाजा लाना और घोड़ा बनकर पीठ पर बच्चों को बैठाना उनका हर दिन का काम हो गया। पास पड़ोस के बच्चे तक बोवा दादा के पास आकर खेलने लगे।

बोवा दादा ने अपनी जिंदगी का एक रास्ता बना लिया। वह रास्ता आज भी चल रहा है। समय ने बोवा दादा के शरीर पर काफी छाप छोड़ी है। फिर भी उमर से अधिक वे काम करते हैं। बोवा दादा के बिना घर अधूरा है। उनके रहने का कमरा, बोवा दादा का कमरा कहलाता है। घर के काम काजों में उनका हाथ रहता है। वे घर के रक्षक हैं और अपने दादा की तरह बोवा दादा हम सबके प्यारे हैं। अपने दादा एक बार हम सबको डाँट सकते हैं, पर बोवा दादा तो दुलार ही दिखाते हैं। दादा जी के डाटने पर कभी-कभी बोवा दादा हम लोगों का पक्ष भी ले बैठते हैं उस समय दादा चुप्पी मार कर रह जाते हैं। वे बोवा दादा का आदर करते हैं।

बोवा दादा की, कहानी का कुछ हिस्सा हम लोगों की आँखों के सामने से गुजरा है। यह अपने में एक सुन्दर इतिहास है इसके अलावा भी पड़ोसियों और दादी ने जो कुछ बोवा दादा के विषय में बताया है, वह भी बड़ा सुन्दर है।

बोवा दादा सचमुच महान् पुरुष हैं। और हम लोगों के लिये तो वे वास्तव में प्यारे—दादा ही हैं।

□

टेसू

बच्चे मुहल्ले के ही थे—रामू, शशि, राकेश और जीतू। सिद्दीकी और कमाल पहले से मेरे पास बैठे थे। ये भी इन नये बच्चों के साथ जिज्ञासा कर उठे। रामू, शशि, राकेश और जीतू पाँच दिन से घर-घर अपना टेसू ले जा रहे हैं। वे हर घर में जाते हैं, बैठकर टेसू के गीत गाते हैं और जो अनाज या पैसा मिलता है, उसको इकट्ठा करते जाते हैं। पूनो के दिन उनके टेसू का झेंझी से ब्याह होगा, आतिशबाजी छूटेगी, पंडित जी ब्याह पढ़ेंगे और लोगों को खील बतासे बाँटे जाएँगे। इस सबका खर्च इसी अनाज और पैसे से पूरा होगा।

आज चारों बच्चे यह राय बनाकर आए हैं कि लड़कियों के बने ऊटपटाँग टेसू के विषय में वे अपने चाचा से पूछेंगे। चारों बच्चे चाचा को बड़े प्यारे लगते हैं। प्यारे इसलिए लगते हैं कि मुझ जैसे खूसट को और पूछता कौन है और ये बच्चे इतना पूछते हैं कि कुछ कहना नहीं। चारों मुझे लाल बुझक्कड़ ही समझते हैं। अब तो इस कड़ी में सिद्दीकी और कमाल भी शामिल हो गए हैं। पर मैं ऐसा कोई ज्ञानी हूँ नहीं, जैसा ये बच्चे मानते हैं। फिर भी इन बच्चों के प्रश्नों के उत्तर तो देता ही रहता हूँ।

रामू बोला—"चाचा जी, हमें टेसू के बारे में कुछ बताइए। बड़े ऊलजलूल से हैं ये टेसू महाराज! तीन लकड़ियाँ आड़े-बेड़े लगाना तीनों के ऊपर तीन मुँह और बीच में दिया जलाना, कितना विचित्र रूप है ये।"

"हाँ चाचा जी, बड़ा अजीब रूप है टेसू का।" सिद्दीकी भी बोला।

"चाचा जी, इसके पीछे कोई बात तो होगी ही और आपको वह बात जरूर मालूम होगी।" शशि और राकेश बोले।

"टेसू के बारे में तो मैं बताऊँगा," मैंने कहा, "लेकिन तुम चारों साथी मिलकर पहले टेसू का गीत सुनाओ। तुम लोग बड़ा अच्छा गाते हो।"

चारों ने अपनी मीठी आवाज में बड़े अच्छे ढंग से टेसू का गीत सुनाना आरम्भ किया।

"टेसू आए घर के द्वार
खोलो रानी चंद किवार
चंद नंद की सात भौंरियाँ
एक मन पीसैं, दो मन खायं
बड़े मल्ल सौ जूझन जायं"

गीत ने जैसे एक समा बाँध दिया या जैसे मेरे कमरे में गीत की लहरें उठने लगीं। मैं तो गीत में ऐसा खोया कि जब गीत खतम हुआ तो ऐसा लगा जैसे मैं सपनों के संसार से लौट आया हूँ या जैसे मैं स्वर्ग में बैठा था और एकाएक धरती पर गिरा दिया गया हूँ।

गीत मैं सुन चुका था और अब जिज्ञासु बच्चों को टेसू के सम्बन्ध में मुझे बताना था। मेरे काम का शुल्क बच्चों ने गीत गाकर पहले ही काफी अधिक चुका दिया था।

मैंने कहा—"तुमने अर्जुन का नाम सुना है।

"सुना ही नहीं, अर्जुन के बारे में पढ़ा भी है" चुलबुली छाया ने आते हुए कहा। उसे पता लग गया कि मैं कुछ बताने जा रहा हूँ। मेरी गप्प गोष्ठी या ज्ञान गोष्ठी की वह भी एक सदस्य है।

"अर्जुन को बारह वर्ष का बनवास मिला था।" सभी ध्यान लगाकर बात सुन रहे थे कि छाया बोल पड़ी—"बनवास क्यों मिला था।"

"यह बात मैं फिर बताऊँगा। पहले अभी, जो बात उठी है उसे पूरा कर दूँ।"—मैंने कहा।

"छाया, तुम बीच में मत बोलो। हम लोग टेसू के बारे में जानना चाहते हैं।" किसी ने टोका।

मैंने आगे कहा—"बनवास में जंगल में रहा जाता है। राम को जब बनवास मिला था तो वे भी चौदह साल तक बन में रहे। इसी प्रकार अर्जुन भी बन में आ गए। आजकल जैसे कुछ लोग जंगलों रहते हैं, उसी प्रकार उस समय भी लोग जंगलों में रहते थे। ऐसे ही बन में रहने वाले लोगों के परिवार में एक लड़की थी चित्रांगदा। वह मणिपुर के राजा चित्रवाहन की पुत्री थी। अर्जुन वीर थे, सुन्दर थे, समझदार थे

और साथ ही अच्छा बोलते थे। इन्हीं बातों को देखकर राजा चित्रवाहन ने अपनी पुत्री चित्रांगदा की अर्जुन से शादी कर दी। पिता ने सोचा—चित्रांगदा अर्जुन की सेवा करेगी। जब लड़का वापिस जायगा तो मेरी पुत्री रानी बन जाएगी और महल में रहने लगेगी।

यही भावना थी चित्रांगदा की अर्जुन से व्याह करने की।

चित्रांगदा और अर्जुन साथ-साथ रहने लगे। कुछ समय बाद चित्रांगदा को एक पुत्र हुआ। बड़ी खुशी मनाई नाना, नानी ने भी, और माँ चित्रांगदा ने भी। अर्जुन भी खुश हुए। बन में रहने वाले नाना, नानी, माँ और पिता की स्नेह की छाया में लड़का पलने लगा। नाना ने या शायद पिता ने पुत्र का नाम रखा बभ्रुवाहन।

जिस तरह एकलव्य जंगल में पला था, पशु पक्षियों के बीच खुशी से रहा था परिश्रम से वीर बना था, उसी प्रकार बभ्रुवाहन भी अपने परिश्रम से वीर बनने लगा। बड़ा बली था बभ्रुवाहन। वह बहुत तेज भी था। हर बात को तुरन्त सीख जाता था। एकलव्य भी ऐसा ही तेज था। एकलव्य भील का लड़का था। लेकिन बल, बुद्धि, ज्ञान और तेज का सम्बन्ध किसी जाति से नहीं होता। यह गुण किसी भी घर के बालक में हो सकता है—वह बालक चाहे गाँव का हो चाहे शहर का, चाहे गरीब घर का हो या चाहे अमीर का।

"आगे क्या हुआ ?" राकेश ने टोका।

"आगे की कहानी आ रही है।" छाया बिगड़ कर बोली। "चाचा जी कितनी अच्छी बात कह रहे थे, इसको तुम नहीं सुनना चाहते।"

"बिगड़ो मत" मैंने कहा। बेचारा सुनना चाहता है, तभी तो सारे काम छोड़कर बैठा है। इतना कहकर मैंने फिर कहानी आगे बढ़ाई।—"धीरे-धीरे बभ्रुवाहन बड़ा हुआ। मणिपुर को तुमने नक्शे में देखा होगा। यह असम से सटा पहाड़ी प्रदेश है। इस प्रकार पहाड़ी लोगों के राजा चित्रवाहन वास्तव में बनवासी ही थे। अपनी मेहनत से अपने को बनाने वाला बभ्रुवाहन धनुष चलाने में अपने पिता के ही समान तेज निकला। पर उसके मन में पिता के प्रति बड़ा आदर भी था। इसीलिये जब अर्जुन अपने बड़े भाई युधिष्ठिर का अश्वमेध का घोड़ा लेकर मणिपुर में पहुँचे तो बभ्रुवाहन बड़े आदर से पिता से मिलने आया। उस समय वह मणिपुर का राजा बन चुका था।"

"फिर क्या हुआ ?" राम बोला।

"आगे सुनो" मैंने कहा—"जब बभ्रुवाहन अर्जुन के पास आया तो वे अपने पुत्र को देखकर तो प्रसन्न हुएं, पर वे यह सोंचते थे कि बभ्रुवाहन उनसे युद्ध करके अपनी वीरता का परिचय देगा। किसी राज्य में अश्वमेघ के घोड़े के पहुँचने पर युद्ध करने का नियम है। पर विनम्र बभ्रुवाहन पिता से युद्ध क्यों करता।" तब अर्जुन उससे बोले—"तू अत्यंत कायर और अयोग्य है। मैं तो हथियार लेकर युद्ध करने आया हूँ, फिर तू युद्ध क्यों नहीं करता। वीर का कर्त्तव्य युद्ध करना है, युद्ध से बचना नहीं।"

बहुत ज्यादा ललकारने पर बभ्रुवाहन ने अर्जुन पर तीर चलाने शुरू कर दिए। अर्जुन तो बहुत अच्छे तीरंदाज थे ही, पर चित्रांगदा का पुत्र बभ्रुवाहन भी तीर चलाने की कला में कम न था। उसने सनासन-सनासन तीर छोड़कर अर्जुन को घायल कर दिया। वे जमीन पर गिर पड़े और बेहोश हो गए। चित्रांगदा और बभ्रुवाहन की सौतेली माँ उलूपी ने तो अपने पति को मरा हुआ ही मान लिया। इसीलिए चित्रांगदा और उलूपी रोने कलपने लगीं। तब उलूपी बभ्रुवाहन से बोली—"बेटा, किसी तरह अपने पिता को स्वस्थ करो। मुझे बड़ा दुःख हो रहा है और तुम्हारी माँ चित्रांगदा को भी तुम्हारे पिता की यह दशा हम लोगों से नहीं देखी जा रही है।"

"बभ्रुवाहन तो पहले ही पिता से युद्ध नहीं करना चाहता था। पिता के क्रोधित होने और ललकारने पर ही उसे वीरता दिखानी पड़ी थी। वह तो भेंट देकर पिता का आदर करना चाहता था। माताओं के कहने पर बभ्रुवाहन ने चिकित्सा की व्यवस्था की। अर्जुन स्वस्थ हो गए और अपने देश लौट आए।"

मैं आगे कहानी कह रहा था और बच्चे ध्यान से सुन रहे थे। मैंने आगे बताया—"पाण्डव और कौरव चचेरे भाई थे। पाण्डव महाराज पाण्डु के पुत्र थे और कौरव धृतराष्ट्र के। पाण्डु और धृतराष्ट्र भाई-भाई थे। धृतराष्ट्र बड़े थे, पाण्डु छोटे थे। पर धृतराष्ट्र अंधे थे, इसी से राज्य उन्होंने छोटे भाई पाण्डु को सौंप दिया था। जब कौरव बड़े हुए तो उन्होंने कहा—"हमारे पिता जी बड़े हैं, राज्य उनका है, इसलिये राज्य पर हमारा अधिकार है।" पाण्डवों ने कहा—"लेकिन आधा

राज्य हमारा भी है, क्योंकि हमारे पिता ही राजा रहे हैं।" "नहीं, आप लोगों का राज्य पर जरा भी अधिकार नहीं है, पूरा राज्य हमारा है। इच्छा हो तो युद्ध कर लो।"

युद्ध की तैयारी शुरू हो गई। वही महाभारत वाला भयानक युद्ध। श्रीकृष्ण भी इस युद्ध में काम कर रहे थे। वे बड़े होशियार थे। वही ब्रज में गाएँ चराने वाले श्रीकृष्ण। महाभारत की लड़ाई के समय वे मथुरा के राजा थे। पाण्डवों को वही राय मशविरा देते थे।

जब लड़ाई शुरू हुई तो एक नई विपत्ति आ गई। कर्ण और द्रोणाचार्य जैसे लोग तो कौरवों के पक्ष में थे ही, मणिपुर के अर्जुन के पुत्र बभ्रुवाहन ने भी घोषणा की कि "महाभारत की लड़ाई में जो सेना हारेगी, वह उसी का साथ देगा।" पाण्डवों की तैयारी अच्छी थी। कौरवों की हार तय थी। लेकिन बभ्रुवाहन द्वारा पैदा की गई विपत्ति को टालने के लिए श्रीकृष्ण ने एक उपाय निकाला। उन्होंने ब्राह्मण का वेष बनाया और जा पहुँचे बभ्रुवाहन के यहाँ। पहरेदार से खबर करवा दी—"महाराज से कहो एक ब्राह्मण दान लेने आया है।

उस जमाने में ब्राह्मणों का बड़ा आदर किया जाता था। बभ्रुवाहन खबर पाते ही उसी प्रकार बाहर आया, जैसे कृष्ण सुदामा के आने की खबर पाते ही दौड़कर बाहर आ गये थे।

"आइए, महाराज, आइए। ब्राह्मण देवता, महल में पधारिये।" उसे क्या पता था कि यह कोई ब्राह्मण नहीं, चतुर श्रीकृष्ण हैं और किसी मतलब से आये।

श्रीकृष्ण दरबार में गये। बभ्रुवाहन ने आदरपूर्वक आसन पर बैठाया फिर हाथ जोड़कर कहा—"ब्राह्मण देवता आपने कैसे यहाँ तक कष्ट किया मैं आपकी क्या सेवा करूँ। आपकी चरण-धूलि पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ।"

"मैं तुमसे एक दान लेने आया हूँ। दोगे?"

"अवश्य दूँगा। कहें तो।"

"कहूँगा बाद में पहले वचन दो।"

"वचन देता हूँ।"

"ऐसे नहीं, तीन बार कहो कि मैं आपको दान देने का वचन देता हूँ।"

बभ्रुवाहन ने अपनी बात को तीन बार दुहरा दिया—"जो बात तीन बार कह दी जाती है, वह पक्की हो जाती है ।"

इसी को त्रिवाचा या तीन वचन कहते हैं ?" सुरेश ने पूछा ।

"हाँ ।"

"अच्छा आगे कहानी सुनाइए ।"

"सुना तो रहे हैं कहानी चाचा जी । तुम कहानी के बीच में क्यों कूद पड़ते हो ?" छाया बिगड़ कर बोली ।

सब चुप हो गए । कहानी आगे चल पड़ी—"जब बभ्रुवाहन ने तीन बार वचन दे दिया तो श्रीकृष्ण बोले—आप मुझे अपना सिर दान में दे दीजिए ।"

"सिर !" बभ्रुवाहन चकराया । उसे पहले तो लगा कि "क्या यह ब्राह्मण पागल है । मेरा सिर लेकर क्या करेगा । रुपये-पैसे माँगता, हाथी-घोड़ा माँगता, राज्य का कुछ हिस्सा माँगता या पूरा राज्य ही माँगता तो बात समझ में आती । लेकिन यह तो मेरा सिर माँग रहा है ।" पर तभी बभ्रुवाहन सारी बात समझ गया । उसे अपनी वह प्रतिज्ञा याद हो आई कि "वह उसी की ओर से लड़ेगा, जो युद्ध में हारेगा ।" उसे यह पता था कि हार कौरवों की होनी है । इसी से वह कौरवों का साथ देना चाहता था । जैसे कर्ण भला होते हुए भी कौरवों के साथ था, उसी प्रकार वह भी कौरवों के साथ सहयोगी बनने वाला था वह यह भी जान गया कि दान माँगने वाला ब्राह्मण और कोई नहीं, खुद श्रीकृष्ण हैं, जो चकमा देकर उसका सिर लेना चाहते हैं । पर वह अपनी त्रिवाचा से बँधा था । हाँ यह उसने अपने मन में जरूर सोचा कि लोग अपनी बात के लिए कैसे-कैसे अन्याय करते हैं ।

बभ्रुवाहन बोला—'महाराज, आप चाहे ब्राह्मण हों, चाहे कोई हों । मैंने वचन दिया है, सो आपको सिर दूँगा लेकिन आप भी मेरी एक बात मान लीजिए ।"

"क्या ?" श्रीकृष्ण ने पूछा ।

"मेरी बड़ी इच्छा है कि महाभारत के इस महान् युद्ध को देखूँ । इच्छा तो युद्ध में भाग लेने की थी, पर वह अब पूरी होने से रही, यह दूसरी इच्छा आप पूरी कर दीजिए ।"

"ठीक है, तुम्हारी इच्छा पूरी होगी। इसके लिए जो कहो वही किया जायगा।"

बभ्रुवाहन ने युद्ध देखने का तरीका बताया—"ब्राह्मण देवता, अपने वचन के अनुसार मैं अपना सिर आपको भेंट कर दूँगा। फिर उसे आप एक ऊँचे पेड़ पर रख दीजिए। बस, वहीं से मुझे युद्ध दिखाई देता रहेगा।

"तुम महान् हो। बहुत बड़ा दान दिया है।" चतुर श्रीकृष्ण ने कहा। "तुम्हारी यह इच्छा जरूर पूरी होगी।" इतना कहकर श्रीकृष्ण फिर बोले—"और भी कोई इच्छा हो तो वह भी बता दो, उसको भी पूरा करा दिया जायेगा।"

"एक इच्छा और है" बभ्रुवाहन ने कहा। "मैं अब तक क्वांरा मेरी उम्र विवाह के योग्य हो गई। यदि जीवित रहता तो धूमधाम से मेरा विवाह होता, मेरे घर कोई राजकुमारी रानी बनकर आती। पर अब तो जो वचन दे चुका हूँ, उसके कारण कुछ होना नहीं है, फिर भी मेरे सिर का ही सही, विवाह करा देना। मुझे इतने से ही संतोष हो जायेगा।" उसे फिर एक बार अपनी त्रिवाचा याद आ गई वह दुःखी हो गया। पाण्डवों और श्रीकृष्ण के ऐसे विचार पर भी उसे दुःख हुआ कि किस तरह उससे वचन लेकर उसको फँसा लिया।

श्रीकृष्ण बोले—"तुम्हारा विवाह वर्ष की पहली लग्न में होगा अर्थात् जाड़े के दिनों में शादी लग्न शुरू होती है। तुम्हारा विवाह उससे भी पहले और सबसे पहले क्वार की पूनी को होगा। बस, या कोई और भी इच्छा है?"

"नहीं, अब कोई इच्छा नहीं। मेरी यही दो इच्छाएँ थीं।

"चाचाजी बड़ी अजीब कहानी है" राकेश बोला "अजीब था पुराना जमाना।"

"हाँ भैया, महाभारत की लड़ाई ही अजीब थी। हर झगड़ा ही अजीब होता है। अगर लोग समझदारी से काम लेते तो महाभारत कदापि न होता और समझदारी आ जाय तो कोई भी झगड़ा न हो। झगड़े में हमेशा कभी एक पक्ष और कभी दोनों पक्ष गलती करते हैं। पर जो होना होता है सो होता है। जब बात बिगड़नी होती है, तो बुद्धि भी बिगड़ जाती है।"

अपनी जिज्ञासु मण्डली को मैंने आगे बताया—"बभ्रु वाहन के सिर का पहली लग्न में विवाह कराया गया। फिर उस सिर को एक पेड़ पर रख दिया गया। पर क्या था विचित्र सिर। कौरवों और पाण्डवों की सेनाएँ लड़ रही थीं और पेड़ पर रखा सिर युद्ध देख रहा था। जब कौरवों की सेना जीती तो बभ्रु वाहन का सिर अट्टहास कर उठता। लगता जैसे रावण अपने दसों सिर से हँस रहा है। इसका फल यह होता कि पांण्डव सेना घबराकर पीछे हट जाती।"

महाभारत की लड़ाई में श्रीकृष्ण का एक ही काम था, पाण्डवों को जिताना। इसके लिए वे हर तरह की समझदारी से काम ले रहे थे। जब उन्होंने देखा कि बभ्रु वाहन के सिर के अट्टहास से पाण्डव सेना हार रही है तो उन्होंने उस सिर को ही नष्ट करवा दिया। लोग कहते हैं कि पेड़ में घुन लग गया, वह टूट कर गिर गया और सिर नष्ट हो गया।

"बड़े विचित्र-विचित्र काम हुए महाभारत में" रामू बोला—"इसका मतलब है कि पाण्डवों की जीत में भी गड़बड़ी है।"

मैंने कहा—"जब लड़ाई छिड़ती है तो अच्छे-अच्छे लोग न्याय अन्याय का विचार खो बैठते हैं। सभी लोग यही मानते हैं कि कौरव अन्यायी थे और पाण्डव न्यायी थे। पर कुछ लोग यह भी कहते हैं कि जब राज्य बड़े भाई धृतराष्ट्र का ही था तो पाण्डवों ने राज्य माँगा ही क्यों? और यदि थोड़ा सा राज्य माँगा भी तो कौरवों को भी जिद्द नहीं करनी थी। समझौता करके बात हल कर लेनी थी। लेकिन मैं पहले ही कह चुका हूँ, जो होना है, वह होकर ही रहता है।"

कमल इतनी देर से चुप ही था। अब वह बोला—"चाचाजी टेसू मैंने भी देखा है। कहानी तो आपने सुना दी। पर बभ्रु वाहन की इस कहानी से टेसू की शक्ल से क्या सम्बन्ध बना?"

"वह भी सुन लो।" मैंने कहा "टेसू की तीन लकड़ियाँ वह पेड़ है, जिस पर बभ्रु वाहन का सिर रखा गया था। तुमने देखा होगा कि एक दूसरे को काटते हुए तीन लकड़ियों को जब सजाया जाता है तो पेड़ सा बन जाता है। हर लकड़ी के सिर पर मिट्टी का मुँह बनाया जाता है। कौड़ियों से आँखें बनाई जाती हैं। वह ऐसे ही है मानों पेड़ पर बभ्रु वाहन का सिर रखा है।"

मैंने आगे बताया—"और टेसू का ब्याह झंझी के साथ वर्ष की पहली लग्न में ही होता है। बात ठीक है कि नहीं।"

"बिलकुल ठीक है, चाचाजी। अपने तो टेसू पर पूरी बात घटा दी।' सब बच्चे बोले।

"लेकिन कुछ बातें, चाचाजी, बड़ी अजीब लगती हैं, जैसे सिर का हँसना वगैरह।" सिद्दीकी ने पूछा।

"तुम्हारी बात का मैं समर्थन करता हूँ।" मैंने सब बच्चों से कहा, "पर मैंने यह कहानी सुनी थी अपनी दादी से। तुम टेसू का खेल खेलते हो। पूनो को कुल तीन दिन बाकी हैं। उस दिन तुम झंझी के साथ अपने टेसू का ब्याह करोगे। अच्छा खासा उत्सव होगा। फिर भी टेसू के किस्से की एक बातों पर मुझको भी आश्चर्य है। लेकिन कुछ तो सच हैं वे चाहे जिस रूप में हों—तभी तो बभ्रुवाहन के नाम पर टेसू का उत्सव मनाया जाता है।"

"एक बात और है," मैंने नई बात बताई। "जैसे बभ्रुवाहन का सिर नष्ट किया गया था, उसी प्रकार विवाह के बाद टेसू का सिर भी नष्ट कर दिया जाता है और वह भी लाठियाँ मार-मार कर। कहते हैं कि यदि नष्ट किए गए टेसू का लंजर-पंजर कोई किसी के द्वार पर रख आए तो उस घर का पूरा साल झगड़े से बीतता है। यहाँ भी महाभारत की बात आ गई। यह भी कहते हैं कि तड़के ही जो नष्ट किए टेसू की कौड़ी ले आए, वह साल भर खुशहाल रहता है। इसीलिए कौड़ी लेने के लिए मुंह अँधेरे ही लड़के दौड़ते हैं।

"पिछले साल रामू कौड़ी ले आया था राकेश ने बताया। बड़ी मौज से साल गुजरा होगा?"

अच्छा अब काफी देर हो चुकी है। मैं बोला कहानी खतम हो गई। मुझे टेसू की कहानी सुनाते हुए दुःख ही होता है बड़ा दुखद था महाभारत का यह युद्ध जिसमें अनेक भले लोग खतम हुए होंगे।

मैंने देखा—महाभारत की लड़ाई और टेसू की कहानी का बच्चों पर असर पड़ा। वे बड़े गम्भीर हो गए। मैंने भी अब बात आगे नहीं बढ़ाई बल्कि सबको अपने-अपने घर जाने को कहा।

सब मुझे प्रणाम करके अपने-अपने घर चल दिये।

डॉ० अमोल बैनर्जी

मैंने डॉक्टर अमोल बैनर्जी का नाम कभी नहीं सुना था। कहाँ मैं, कहाँ गुदौलिया के काफी आगे सुनारपुरा। सुनारपुरा में भी गली। बनारस गलियों का शहर है। गली में गली, बंद गली खुलती गली, गलियों से जुड़ती गली ! अजीब हालत है। यदि कोई किसी स्थान पर जाना चाहता है तो वह सड़क से भी जा सकता है और गलियों से भी। गलियों से अपने पहुँचने के स्थान पर वह जल्दी पहुँचेगा।

इन गलियों का दूसरा फायदा और है। ये गलियाँ बड़ी ठंडी रहती हैं। गरमियों में जब मकानों की ऊपरी मंजिल तपती रहती है गलियों में कश्मीर और नैनीताल की ठंडक रहती है।

सुनारपुरा से थोड़ा आगे जाकर फिर दाहिनी ओर मुड़कर और फिर सीधे दस कदम चलकर डॉ० अमोल बैनर्जी का होमियोपैथी का दवाखाना है। ऐसी गली में बाहर का आदमी कौन जाता है। इसलिए डॉ० बैनर्जी को आस-पास के ही लोग जानते हैं और उनसे इलाज कराते हैं। उनका इलाज सस्ता और शर्तिया होता है। ऐसे चूक किससे नहीं होती पर अस्सी प्रतिशत उनके मरीज निश्चित रूप से ठीक हो जाते हैं।

अस्सी प्रतिशत ! छोटी बात तो नहीं है। पर इन अस्सी प्रतिशत लोगों को कोई नहीं जानता। ये होते हैं मजदूरी करने वाले, दुकानदार, साधारण अध्यापक, और इन सब के लड़के-बच्चे और स्त्रियाँ। एक रुपये से लेकर डेढ़ रुपये तक की दवा ! बस ! मरीज ज्यादा से ज्यादा हफ्ते पर में ठीक। और मरीज की हालत अगर बहुत गम्भीर है तो बड़े अस्पताल में भेजने की राय। गम्भीर मरीज को डॉक्टर बैनर्जी लेते ही नहीं। यह नहीं कि उल्टा सीधा इलाज करते रहें, मरीज पर चाहे जो गुजरे। डॉक्टर का काम मरीज को स्वस्थ करना है—दवा देकर या राय देकर।

पर "चंद्रचूड़" उन्हें कैसे जान गया। बाद में उसने बताया कि वे उसके पिता के सहपाठी रहे हैं। चन्द्रचूड़ ने नरायनपुर में बाल कवि

सम्मेलन किया था। मुझे भी बुलाया था। बहुत से बच्चों ने कविताएँ सुनाईं। छोटे-छोटे बच्चों के मुँह से छोटी-छोटी बाल कविताएँ सुनकर बड़ा अच्छा लगा। राय मैंने ही दी थी कि बड़ों के कवि सम्मेलन तो होते ही रहते हैं। रेडियो पर होते हैं, संस्थाओं में होते हैं, लेकिन बाल कवि सम्मेलन न रेडियो पर होते हैं, न संस्थाओं में। चंद्रचूड़ ने कहा भी—"चाचा जी, क्या बात है कि आकाशवाणी पर बड़ों के लिए कविताएँ लिखने वाले कवि इकट्ठे होते हैं और कविता पाठ करते हैं। बच्चों के लिए लिखने वाले कवियों को आकाशवाणी केन्द्र क्यों नहीं बुलाते और क्यों नहीं बाल कवि सम्मेलन आयोजित करते। कुछ नहीं तो साल में एक दो बार ही सही, या कम-से-कम 'बालदिवस' पर ही सही।" बात तो बिलकुल ठीक है। पर मैं क्या उत्तर दूँ।

जब नरायनपुर का बाल कवि सम्मेलन समाप्त हुआ तो चंद्रचूड़ बोला--"मुझे भी शहर चलना है। आपके साथ ही चलूँगा।" चंद्रचूड़ के ज्ञान, स्वभाव और काम से मैं बड़ा प्रभावित हूँ। मुझे उसके साथ आने में प्रसन्नता हुई। फिर कहा भी है—"एक से दो भले। बातचीत करते रास्ता कट गया।" रास्ते में चंद्रचूड़ ने बालकवि सम्मेलन में एक बच्चे द्वारा सुनाई गई कविता फिर सुनाई और कहा—"यह कविता मुझे बड़ी अच्छी लगी"—

छोटे पत्ते, मोटे पत्ते,
पत्ते पीले, हरे हरे।
बीस कोस के एक बाग में,
देखे पत्ते भरे भरे॥

झरे कभी पत्ते पतझर में,
फिर आई आँधी खड़खड़।
इतने पत्ते उड़े जोर से,
हुई बड़ी भारी गड़बड़॥

दस गाँवों के ऊपर पत्ते,
गाँव खो गए पत्तों में।
गाँव दिखाई दिए कहीं वे,
जाकर काफी हफ्तों में॥

ऐसी आँधी किसने देखी,
बाग किसी ने देखा क्या।
मैंने सूनी आँधी देखी,
और बाग में अभी गया।।

कविता वास्तव में अच्छी थी। बातें करते और कविता सुनते-सुनते शहर आ गया।

बस से उतरकर मैंने घर चलने को कहा तो चंद्रचूड़ बोला—"चाचाजी, पहले सुनारपुरा में एक डॉक्टर साहब के यहाँ चलेंगे उनसे मुझे मिलना है। मिलना क्या, उनका दर्शन करना है। फिर आपके यहाँ चलूंगा।"

सुनारपुरा में गलियों की पहेली सुलझाते हुए चंद्रचूड़ बैनर्जी होमियोहाल दवाखाने में लाया। वहाँ एक लम्बे कद के दुबले से डॉक्टर बैठे एक बच्चे को देख रहे थे। उनको हलकी-हलकी सी मूछें थीं, पुरानी चाल का चश्मा था और उनका रंग कुछ-कुछ साँवला था। चंद्रचूड़ ने 'जाते ही डॉक्टर साहब के पैर छुए। मैंने हाथ जोड़े। वे मेरे आदर में खड़े हो गये। डॉक्टरों को लोग इतना सम्मान देते हैं कि वे किसी के आदर में खड़े हों, यह बड़ी बात हो जाती है, हालाँकि यह कोई बड़ी बात नहीं है, क्योंकि डॉक्टर भी आखिर आदमी ही होते हैं। पर मुझे उनके खड़े होने से खुशी हुई। उन्होंने मुझे सम्मान से बैठाया। चंद्रचूड़ ने मेरा परिचय कराया—"ये मेरे गुरु भी हैं और मेरे चाचा जी भी। मैं जो कुछ कविता आदि लिखता हूँ, इनको दिखाता हूँ।" फिर डॉक्टर साहब का परिचय कराया—"आप भी मेरे चाचाजी हैं। वास्तव में आपने ही मेरी ज़ान बचाई है।"

"अच्छा, अच्छा! हो गया। अन्दर जाकर चाचीजी से मिल आओ।" डॉक्टर साहब ने बीच में ही टोक दिया। चंद्रचूड़ आगे नहीं बोल सका और अन्दर चला गया। मैं बैठा रह गया। डॉ० बैनर्जी बोले—"माफ करिएगा, जरा मरीजों को देख लूँ। देर से बैठे हैं। आपसे मिलकर बड़ी खुशी हुई। आपसे फिर बातें होंगी।"

डॉक्टर साहब की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि चंद्रचूड़ आया और मुझसे बोला "चाचाजी, अन्दर आइए।" डॉक्टर साहब ने कहा—"हाँ हाँ अन्दर जाइए।"

अन्दर पहुँचने पर डॉक्टर साहब की स्त्री, लड़की और लड़का, सबने मुझे प्रणाम किया। चंद्रचूड़ ने मेरा परिचय कुछ विस्तार से—शायद बहुत बढ़ा-चढ़ाकर दे दिया था। तभी भरपूर जलपान आया। मैंने और चंद्रचूड़ ने जलपान किया। बड़ी भूख भी लगी थी। मुझे इस स्वागत सत्कार पर प्रसन्नता भी हो रही थी, आश्चर्य भी हो रहा था और संकोच भी। यद्यपि डॉक्टर साहब के घरवाले इतनी आत्मीयता दिखा रहे थे कि संकोच नहीं होना चाहिए था, पर संकोच मेरी आदत ही है। पर यह भी देखा कि डॉक्टर साहब ने छोटे डॉक्टर के रूप में भी अपने परिवार को कितना सुसंस्कृत बनाया है। लड़की संगीत से बी० ए० कर रही थी और लड़का एम० एस-सी०। उनके पास एक अच्छा खासा पुस्तकालय भी था। पूरे परिवार में संगीत और कविता की गूँज थी। बड़ा शांत और सुन्दर परिवार था।

जब मैं आश्चर्यचकित होकर सब कुछ देख और समझ रहा था, तभी चंद्रचूड़ ने कहा—"चाचाजी, डॉक्टर साहब के ही कारण आज मैं आपके पास हूँ, नहीं तो न जाने क्या होता। दो साल पहले की बात है, मेरे पेट में भयंकर दर्द उठा था। पिता जी ने कई डॉक्टरों को दिखाया। कोई कुछ रोग बताता, कोई कुछ। इलाज करने को भी कोई डॉक्टर तैयार न था। कुछ डॉक्टरों ने पिता जी को राय दी कि मैं बम्बई जाऊँ और कुछ ने कहा पटना। दो एक डॉक्टरों ने अमेरिका जाने को भी कहा।" उन्होंने कहा—"ऐसा ही दर्द एक सेठजी को भी उठा था। आखिर जब वे अमेरिका गये तो तबियत ठीक हो गई। सभी डॉक्टर भले ही ऐसे न हों, पर कुछ डॉक्टर ऐसे जरूर हैं जो शायद आँख खोलकर आदमी को देखते ही नहीं। मेरे पिताजी सेठ नहीं थे कि मुझे इलाज के लिए अमेरिका ले जाते।"

चंद्रचूड़ ने आगे बताया—"जिन डॉक्टरों ने पिताजी को अमेरिका जाने के लिए कहा, उनसे पिताजी की थोड़ी झड़प भी हुई। उधर सारा घर मेरे लिए चिंतित था। पिताजी भी चिंतित थे। तभी पिताजी को इन्हीं डॉक्टर साहब का ख्याल आया। डॉक्टर साहब और पिताजी इण्टर में साथ-साथ पढ़ते थे। पिताजी मुझे यहाँ लाए। डॉक्टर साहब ने इलाज शुरू किया। हालत सुधरने लगी। तीन महीने के लगातार इलाज से मैं ठीक हो गया। बहुत सस्ता इलाज। इतने कम पैसे में

ऐसे अच्छे इलाज की पिताजी बात भी नहीं सोच सकते थे। आज मैं आपके साथ हूँ। मैं पूरी तरह स्वस्थ हूँ। तभी से डॉक्टर साहब मेरे लिए डॉक्टर नहीं, चाचाजी हैं और मैं शहर में जब भी आता हूँ, डॉक्टर साहब के दर्शन अवश्य करता हूँ।"

पूरी कहानी सुनकर मैं सोचने लगा—"लोग बड़ा डॉक्टर उसको कहते हैं, जिसकी बड़ी कोठी होती है, कार होती है, नौकर होते हैं और रईसों, अफसरों तथा धनियों का इलाज करता है। बैनर्जी को इस आधार पर कोई बड़ा डॉक्टर कैसे कहेगा। उसके पास न कार है, न भारी कोठी। उनके मरीज अत्यंत साधारण लोग हैं—आसपास के, मुहल्ले वाले। लेकिन एक डॉक्टर के काम में वे कितने आगे हैं और एक बड़ा डॉक्टर कहलाने के वे कितने योग्य हैं, यह उनके काम और व्यवहार से जाना जा सकता है। एक महान् डॉक्टर के सारे गुण उनमें। वे मरीजों को प्रेम से देखते हैं, उनका खर्च बहुत कम कराते हैं, ईमान-दारी से इलाज करते हैं और कभी-कभी मरीज से घरेलू सम्बन्ध भी बना लेते हैं, जैसे चंद्रचूड़ को उन्होंने ठीक नहीं किया, उसे भतीजा भी मान लिया और इतना अधिक स्नेह देने लगे।"

जलपान करके तथा घर में सबसे नमस्ते-प्रणाम करके मैं बाहर आया। दवाखाने में अब भी मरीज थे। डाक्टर बैनर्जी उन्हें देख रहे थे। रात के आठ बजने वाले थे। मैंने थके मांदे बैनर्जी साहब को कष्ट देना ठीक नहीं समझा। बाद में मिलने का वादा करके चंद्रचूड़ के साथ अपने घर चला आया।

रास्ते में चंद्रचूड़ ने उनकी और तारीफ की। "वास्तव में ऐसा डॉक्टर तारीफ के लायक ही है।" मैंने चंद्रचूड़ से कहा—"तुम ठीक कहते हो, डॉक्टर नहीं देवता हैं। अबकी फिर किसी दिन चलना। तब इनसे मिलूंगा और बात भी करूँगा।"

ऐसे अच्छे डॉक्टर से मिलना कौन पसन्द नहीं करेगा। डॉक्टर साहब की सुविधा को देखकर मैं चंद्रचूड़ के साथ उनसे मिलने जाऊँगा। पर देखें, सुविधा कब मिलती है, क्योंकि एक अच्छा डॉक्टर खाली भी कम ही रहता है।

□

खंदक रो रहे हैं !

आदरणीय चाचा जी,

चरण-स्पर्श ।

आपका पत्र मिला । आपने पूछा है कि मेरा अपहरण कैसे हुआ ? आपने यह भी पूछा है कि मैं जंगल में कैसे रहा और फिर कैसे छुटकारा मिला ? आपके पत्र ने फिर सारी घटनाएँ ताजी कर दीं । अपहरण की बात याद आते ही मैं काँप उठता हूँ । मुझे कभी किसी ने भद्दी बात नहीं कही—पिताजी ने भी नहीं । लेकिन डाकुओं से मुझे सुनना पड़ा—"हरामी, लुच्चा, मारो चार लात जिससे आँसू पेट में चले जायँ ।" ये बातें मुझे तकलीफ पहुँचाती हैं । लेकिन आपके पत्र का तो उत्तर देना ही है ।

चाचाजी, मेरी उम्र सिर्फ चौदह साल है । मैं एक छोटा-सा लड़का हूँ । लेकिन डाकुओं के साथ पूरे पन्द्रह दिन रहकर कुछ हिम्मती हो गया हूँ । सचमुच मैं मौत के मुँह से निकल आया हूँ और नवीं कक्षा में अपने साथियों के साथ पढ़ रहा हूँ । आपको शंकर और राजेन्द्र का किस्सा याद होगा । पिता के साठ हजार रुपया न देने पर डाकुओं ने दोनों भाइयों को गोली से उड़ा दिया था ।

मेरे अपहरण की घटना यों है । संध्या का समय था । चौदह नवम्बर का दिन । चौदह नवम्बर 'बाल दिवस' होता है । स्कूल में बाल-दिवस मनाया गया था । बड़ा अच्छा सांस्कृतिक कार्यक्रम हुआ था । गीत, कविताएँ और नाटक के कार्यक्रम की दिन भर धूम रही । मैंने कविता सुनाई थी—

बाल दिवस है प्यारा दिन
यह है एक हमारा दिन
ताकधिनाधिन तकतकधिन ।

कविता और भी बड़ी है । सबको बड़ी पसंद आयी थी । कार्यक्रम के अन्त में प्राधानाचार्य जी ने भाषण दिया था । उन्होंने कहा था—

"समाज में बच्चों का भी वही महत्व है, जो बड़ों का है। जिस समाज में बच्चों का आदर नहीं है, और उनके विकास का ध्यान नहीं रखा जाता, वह अच्छा समाज नहीं है। बच्चों का कितना महत्व है, यह इसी बात से देखा जा सकता है कि आज पूरा संसार बाल-वर्ष मना रहा है। एक समूचा वर्ष बच्चों का वर्ष मान लिया गया है।"

प्रधानाचार्य जी का भाषण सुनकर मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ था। अंत में सब बच्चों को मिठाई मिली। मैं मिठाई लेकर खुशी-खुशी अपने घर आया।

शाम को मैं आँगन में बैठा स्कूल के कार्यक्रम के बारे में दादी को बता रहा था। आप तो जानते ही हैं कि हम लोगों का घर गाँव के छोर पर है। पिछवाड़े से ही जंगल शुरू हो जाता है। पिछले ही साल पिछवाड़े एक लकड़ बग्घा मारा गया था। वह पड़ोस का एक बच्चा उठा ले गया था।

घर का दरवाजा खुला था। हलका-सा झुटपुटा हो रहा था। पिता जी बाजार से कुछ सामान लेने गए थे। अम्मा रसोई में थीं। मुनिया कोने में खेल रही थी और दादी माला जप रही थीं और किस्सा सुन रही थीं। बस उसी समय की बात है। कितना बुरा था वह समय। एकाएक मैंने देखा—"चार आदमी तेजी से आए और दौड़कर मुझे उठा लिया। एक बन्दूक ताने रहा और एक मुँह बंद किये रहा। दो ने मुझे उठा रखा था। मेरी तो घिग्घी बँध गई।"

यह सब इतनी तेजी से हुआ कि दादी जब तक डाकू-डाकू चिल्लाएँ, तब तक तो डाकू मुझे उठाकर काफी दूर ले जा चुके थे। फिर भी दादी की पैनी आवाज मुझे दूर से सुनाई दे रही थी—"डाकू, डाकू, बचाओ।" मैं कल्पना कर रहा था कि दादी की चिल्लाहट सुनकर अम्मा दौड़ी आई होंगी और आँगन में पछाड़ खाकर गिर पड़ी होंगी। मुनिया चीख-चीखकर रोने लगी होगी और पिता जी ने भी जब यह घटना सुनी होगी तो रोने लगे होंगे।

मेरी सारी कल्पना सही निकली। घर पर करीब-करीब ऐसा ही हुआ था। पिता जी रोते बिलखते थाने गए थे और मेरे अपहरण की थाने में रिपोर्ट लिखाई थी। धन्य हैं वे थानेदार चाचा, जिन्होंने तुरन्त रिपोर्ट लिखी और पिता जी से बोले—"डाकू आजकल बहुत अपहरण

कर रहे हैं। यह बच्चों पर अत्याचार है। कहाँ 'बालवर्ष' मनाया जा रहा है और कहाँ 'बालवर्ष' में ही बच्चों का अपहरण किया जा रहा है। बहुत बुरा है। पर आपका बच्चा अवश्य मिल जायगा। आप जाइए।"

पिता जी रिपोर्ट लिखाकर और यह सोचकर कर चले आये कि थानेदार साहब बड़े भले आदमी हैं। वे जरूर लड़के की खोज में कुछ उठा न रखेंगे।

डाकुओं द्वारा घर से मेरे अपहरण की बात सुनकर पूरे गाँव में सन्नाटा छा गया। लोग अपने दरवाजों को बंद रखने लगे। छै के बाद शाम को बच्चों का घर से निकलना बंद कर दिया। जहाँ खेल होते थे, वहाँ अब धूल उड़ती थी। सब अपने बच्चों को पलकों के नीचे रख रहे थे और जंगल से मेरे आने का इंतजार कर रहे थे।

चारों डाकू मुझे अथाई से होकर सँकरे रास्तों से जंगल में ले चले। जंगल के इस हिस्से का चप्पा-चप्पा मेरा छाना हुआ था। इसी हिस्से में तो मैंने अपनी बकरी चराई है और जब तब ऊँट भी चराया है। यहीं पिलुआ खाए हैं और यहीं से सेंगर तोड़ता रहा हूँ। लेकिन डाकू कस कर मेरे हाथ पकड़े हुए थे। इसलिए मैं भाग कर कहीं नहीं जा सकता था। एक जगह पैर में कंकड़ गड़ जाने से जब मैं धीरे-धीरे चलने लगा तो एक डाकू ने पीठ में धम्म से घूंसा मारा और कहा—"चल, बहाना करता है। अगर कुछ गड़बड़ किया तो मुँह में बन्दूक की नली ठूंस दूँगा।"

मैं सिसकता जा रहा था और लँगड़ाता हुआ जल्दी-जल्दी चल रहा था। कभी यह सोचकर मन काँपने लगता था कि कहीं ये लोग जंगल में जाकर मुझे मार न डालें किन्तु मैं कर क्या सकता था। मैं तो दूसरों के बंधन में था। अँधेरी रात। टार्च की रोशनी में रास्ता देखते हुए सब लोग चल रहे थे। मैं चिल्ला भी नहीं सकता था। फिर मेरी चिल्लाहट सुनकर सुनसान जंगल में मुझे कौन बचाने वाला था।

करीब दो ढाई घण्टे के बाद सब लोग एक भारी खंदक में पहुँच गए। ये सब खंदक तो आपने भी खूब देखे हैं और मैंने भी। खंदक सौ फीट गहरा होगा। आस-पास पिलुआ की छाया थी। लगता था, यह खंदक खाँद के आस-पास है। अपना खाँद कितना सुन्दर है। खाँद की

ढलान पर बैलगाड़ी ऐसे भागती है जैसे रेल। खाँद पर बैलों को कोई भी गाड़ीवान रोक नहीं सकता।

पर यह तो मेरा अंदाज है। खाँद से होकर तो मैं बार-बार गया हूँ। शायद मैं कहीं और पहुँचा था।

जब चारों डाकू मुझे खंदक में लेकर पहुँचे तो देखा कि वहाँ सोलह-सत्रह डाकू और हैं। बीसों बन्दूकें रखी हुई थीं। तरह-तरह की बन्दूकें! मैंने तो एक साथ इतनी बन्दूकें कभी नहीं देखीं। बाद में इन बन्दूकों के नाम भी सुनने को मिले-स्टेनगन, थ्री नाट थ्री और एस एल आर।

एक डाकू खंदक के ऊपर बैठा था और चारों ओर नज़र रखे हुए था। दूर तक देखने के लिये उसके पास दूरबीन भी थी।

जैसे ही सब लोग पहुँचे, एक डाकू बोला—"पकड़ लाए ?"

"हाँ।"

"वही लड़का है न, जिसकी मुखबिर ने खबर दी थी ?"

"हाँ, वही है, रामनारायन का लड़का"

"कितने के लिए चिट्ठी लिखोगे ?"

"पचास हजार। पचास हजार से एक पैसा भी कम नहीं।" यह बात डाकुओं के सरदार की लगती थी।

उसी समय मैंने देखा कि एक आदमी सिर पर एक डलिया रखकर आया। उसने डाकुओं के सामने डलिया उतारी। डलिया में पूड़ी और सब्जी थी। जब मेरी नजर उस आदमी पर पड़ी तो मैं उसे पहचान गया। वह गाँव के शिवनाथ का नौकर था। पर नौकर मुझे नहीं पहचान पाया। इसीलिए उसने मेरे पिता जी का नाम लेकर बताया कि उन्होंने थाने में रिपोर्ट कर दी है। मुझे उस समय बड़ा आश्चर्य हुआ कि जो शिवनाथ ग्राम प्रधान के पद के लिए खड़े हुए थे, वह डाकुओं को खाना भी खिलाते हैं। और गाँव के जमींदार तो इनका बड़ा आदर करते हैं। तो क्या गाँव के जमींदार भी डाकुओं का साथ देते हैं।

दूसरे दिन पिता जी के नाम चिट्ठी भेजी गई। उन्हीं शिवनाथ ने पिता जी को यह कहकर चिट्ठी दी थी—"बाबूजी, आप घबराइए

मत। मैं आपकी मदद कर दूँगा। पर आप को दो हजार रुपये मुझे देने होंगे।"

मैं दस दिन जंगल में रहा। मेरे हाथ-पैर बँधे रहते थे। पहले दिन मुझे खाने को कुछ नहीं दिया गया। घर पर भी मैंने खाना नहीं खाया था। पर डर और भूख—जब दोनों बातें हों तो डर बड़ा हो जाता है। मुझे बराबर मौत का डर लग रहा था। डर ने मेरी भूख को दबा दिया था। मेरी हालत ऐसी थी कि मैं न रो सकता था, और न कुछ कह सकता था। किताबों में नरक के बारे में पढ़ा है। मैं एकदम नरक में था।

रात बीती। सबेरा हुआ। मेरे लिये तो एक-एक क्षण एक-एक दिन के बराबर था। दोपहर को मुझे खाना दिया गया। जूते में तरकारी दे दी गई और हाथ में रोटी। जूते में खाना खाया। यह कितना दुखदायी अनुभव था। पर लाचारी। न खाता तो यह भी नहीं था। उधर भूख से मेरा बुरा हाल था।

मुझे मरना नहीं, बचना था। डाकू मुझे अलग रखकर बातें करते थे। इसलिए मैं उनकी कोई खास बात नहीं सुन सका। पर मुझसे डाकू यह जरूर कहते थे—"हम लोगों के बारे में किसी को कुछ न बताना। अगर किसी को कुछ बताया तो जान से मार देंगे।' पर मैं तो बंधन में था। छूटता, तब न किसी को कुछ बताता।

पिता जी के पास पचास हजार रुपयों की चिट्ठी पहुँच गई। लिखा था—"पचास हजार रुपये लेकर देवी के स्थान पर मिलो। वहीं लड़का मिल जायगा!" पिता जी भला पचास हजार रुपया कहाँ से लाते। मुश्किल से दस हजार कर सकते थे।

लेकिन थानेदार साहब बहुत अच्छे हैं। अब तो मैं उन्हें थानेदार चाचा कहता हूँ। उन्होंने बड़े पुलिस अधिकारी को खबर दी और पुलिस आ गई। जिस दिन रुपये देने की बात थी, पुलिस ने जंगल घेर लिया। डाकुओं को पता नहीं लग सका। हुआ यह कि डाकुओं को पैंतीस हजार रुपया दिया गया। यही तय हो गया था। रुपया पाकर डाकुओं ने मुझे छोड़ दिया। इधर मैं अलग हुआ, उधर दनादन गोलियाँ चलने लगीं। बीस डाकुओं में दस डाकू मारे गए। चार डाकू घायल अवस्था

में गिरफ्तार हुए। सिर्फ छै डाकू बचकर निकल भागे। पैंतीस हजार रुपया भी एक मरे हुए डाकू से मिल गया।

सारा काम थानेदार साहब की योजना के अनुसार हुआ। भले काम में सफलता ही मिलती है। संयोग से शिवनाथ को भी गोली लगी वे शायद डाकुओं से अपना हिस्सा लेने गए थे। गोली लगने से शिवनाथ मरे तो नहीं, पर उनकी एक टाँग काट दी गई। गोली टाँग में ही लगी थीं। उन पर पुलिस मुकदमा भी चला रही है। डाकुओं में उनकी मिली भगत की खबर पुलिस को लग गई थी।

बहुत कुछ घट गया। अपनी छोटी-सी जिंदगी में मैंने न जाने क्या-क्या देख लिया। पर जो होना था सो हुआ, उस पर किसका वश था। दुःख यही है कि ये डाकू छोटे बच्चों को क्यों सताते हैं। इसलिए कि वे कमजोर होते हैं और छोटे होते हैं। क्या इन डाकुओं के बच्चे नहीं होते। यदि कोई इनके बच्चों के साथ वही करे, जो ये करते हैं, तो इन्हें कैसा लगे? पर यह बात डाकुओं से कौन कहे? उर्दू के एक शेर में मैंने पढ़ा है—"क्रूर हो जाता है इंसान सजाएँ देकर।" ये भी क्रूर हो गए हैं।

चाचाजी, आपने लिखा था, इसलिए इतने विस्तार से उत्तर दिया। वैसे इन बातों को उठाने में बड़ा दुख होता है। लगता है, फिर लोग मुझे पकड़ने आ गए। वास्तव में कुछ ऐसा होना चाहिए कि डाकू बच्चों का अपहरण न करें, उन्हें न सताएँ। जिन खंदकों में बच्चों का अपहरण करके रखा जाता है, वे खंदक आज रो रहे हैं प्रकृति ने क्या ये खंदक इसलिए बनाए हैं? पर बच्चों का अपहरण कैसे रुके? कैसे यह सब बंद हो? इन पर आप भी विचार करिए। न हो तो आप बड़ों की बैठक बुलाइए और बड़े लोग मिलकर विचार करें। मैं तो छोटा हूँ, सोच नहीं सकता।

दीदी और चाचीजी को चरण-स्पर्श कहिएगा, निशांत को स्नेह।

आपका आज्ञाकारी,

आशुतोष

◘
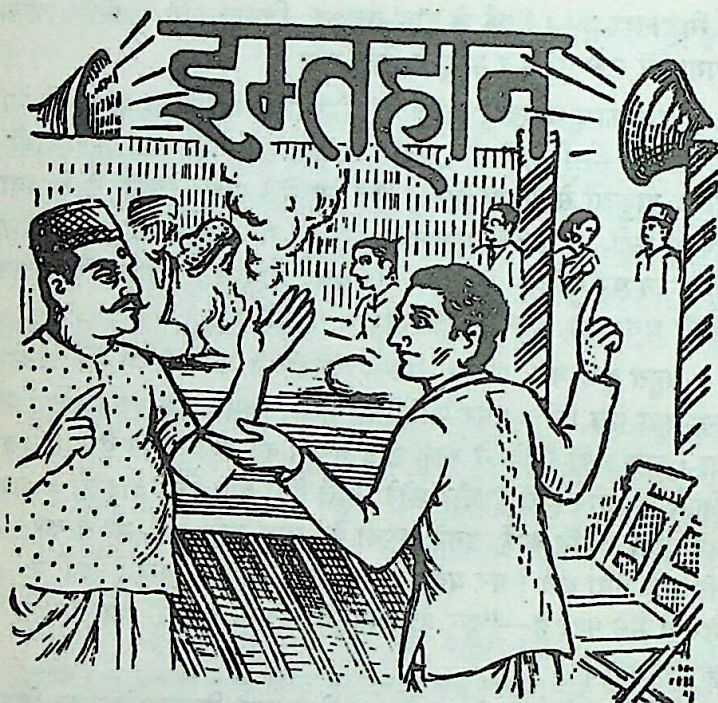
हेमंत नवीं कक्षा का छात्र है। हरिश्चन्द्र कालेज में पढ़ता है। आज उसने अपनी अंग्रेजी की किताब में एक पाठ पढ़ा—'द रूल आफ द रोड, अर्थात् सड़क का नियम।

हेमंत पढ़ने में अच्छा है। स्वभाव से सुशील है। मेहनत से पढ़ता है। सभी अध्यापक उसे मानते हैं। अपनी कक्षा में वही सबसे अच्छा भी है।

अध्यापक जी जब किताब में पृष्ठ अट्ठासी पर आए तो उन्होंने ये वाक्य विशेष ध्यान से समझाए—'भीड़ भरी गली के किसी घर में किसी की शादी हो रही है। एकाएक एक दिन सबेरे घर के बाहर लगे लाउड-स्पीकर से जोर-जोर ये फिल्मी गीतों की आवाज आने लगती है। दो-तीन दिन तक संगीत रुकता ही नहीं। पास के घर के एक महाशय, जो मरीज हैं, शांति पूर्वक सो नहीं पाते, इम्तहान की तैयारी में लगे छात्र कुछ पढ़ नहीं पाते और हर आदमी को मजबूर होकर वह संगीत सुनना पड़ता है।''

अंग्रेजी से हिन्दी में अर्थ बताकर अध्यापक जी फिर बोले—"देखो, यह तो हुआ इसका अर्थ। तुम लोगों में से कुछ ऐसे विद्यार्थी हैं, जिन्हें मेरा बताया अर्थ अक्षर-अक्षर याद हो गया। कुछ विद्यार्थी अक्षर-अक्षर भले ही न याद कर पाएँ, पर दूसरे ढंग से भी अर्थ सही लिख देंगे। जो अंग्रेजी में कमजोर होगा, वह पूरा अर्थ न लिख सकेगा। पर कम नम्बरों से ही सही, उत्तीर्ण तो वह भी हो ही जायगा।"

इतना कहकर अध्यापक जी ने जैसे एक बात पूरी की। सारी कक्षा शांत और चुप थी। विद्यार्थी आगे की बात का इंतजार कर रहे थे, क्योंकि अब तक कही गई बात का कुछ मतलब उनकी समझ में नहीं आया था।

और आगे की बात सामने आ गई। अध्यापक जी बोले—"पर अंग्रेजी से हिन्दी कर लेना या अच्छे नम्बरों से उत्तीर्ण हो जाना ही सब कुछ नहीं है। एक इम्तहान और है जो बार-बार होता है। लोग उसमें भी उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होते हैं, हालाँकि लोग उसे उत्तीर्ण या अनुत्तीर्ण होना नहीं मानते। तुम्हारी किताब का यह पाठ तुम्हारे आगे के इम्तहान के लिये है। यदि तुम्हारे यहाँ कभी शादी होती है आगे और लाउड-स्पीकर लगाकर यही किया जाता है तो इस पाठ के अनुसार अनुचित माना जायगा। इस पाठ की बात का पालन करना जिन्दगी के इम्तहान को उत्तीर्ण करना है। और यदि नहीं तो....।"

हेमंत को अध्यापक जी की बात बड़ी पसंद आयी। उसके विचार तो पहले से ही ऐसे हैं कि वह ऐसी परीक्षा में कभी उत्तीर्ण हो ही नहीं सकता।

हेमंत अपने कमरे में अकेला था। वह गणित लगाने बैठा था। हिन्दी की एक कविता का अर्थ भी लिखना था। पर कक्षा का अंग्रेजी का पाठ और अध्यापक जी का उपदेश उसके दिमाग में गूँजने लगा। उसने कापी बंद कर दी। ठोड़ी को हाथ पर रखकर वह सोचने लग गया। उसके दिमाग में विचार आने लगे।

आदमी के मन का संसार बहुत बड़ा होता है। उसमें जब कोई गोता लगाता है तो जल्दी बाहर नहीं आ पाता। हेमंत सोचने लगा दस दिन पहले की घटना। लाला भजनलाल की लड़की की शादी थी। सबेरे सात बजे से ही लाउड-स्पीकर लग गया। रात को एक बजे तक

शेर की तरह दहाड़ने वाले लाउड-स्पीकर ने लोगों के कानों का भुर्ता बना दिया। उस दिन उसकी बहन की एम० ए० की परीक्षा थी। शोर के कारण ठीक से तैयारी नहीं हो पाई। परचा बिगड़ गया।

हेमंत सोच रहा था—यदि चार ही घंटे लाउड-स्पीकर बजाया जाता, सिर्फ शादी के समय तो ऐसा क्यों होता। मुहल्ले के दूसरे लोगों को भी बड़ी परेशानी हुई।

जब इसी बात को उसके दादा ने लालाजी से कहा तो वे नाराज होकर बोले—"वाह भाई साहब, आप तो अच्छे आदमी हैं। शुभ मौके पर अशुभ बातें करते हैं। क्या रोज-रोज शादी होती है। आपके यहाँ किसी का इम्तहान है तो मैं क्या करूँ। आप अपना काम करिये या आपसे जो करते बने सो करिये। लाउड-स्पीकर बन्द नहीं होगा।"

"नहीं लाला जी, आप नाराज मत होइए" दादा नम्र होकर बोले। "आपकी लड़की मेरी लड़की है। मैंने तो ऐसे ही...." और दादा अपना सा मुँह लेकर घर चले आए।

"कैसी विचित्र बात है" हेमंत ने मन मार-कर विचार किया। "लोग अच्छाई बुराई को जानते हैं, पर उसका पालन नहीं करते। बल्कि अच्छी बात कहने पर लोग और ज्यादा नाराज ही हो जाते हैं।"

हेमंत नन्हा बच्चा नहीं, नवीं कक्षा का विद्यार्थी है। ऐसी तमाम बातें देखता आ रहा है। उसके पड़ोस में श्रीराम काका रहते हैं। वे बस के कण्डक्टर हैं। रात को सात बजे आगरा से चलने वाली बस में जितने यात्री होते हैं, उसमें कम से कम एक तिहाई यात्रियों के टिकट के पैसे अपनी जेब में डाल लेते हैं। तीस-चालीस रुपये रोज से कम उनकी ऊपरी आमदनी है ही नहीं। पाँच छः साल की नौकरी में ही पक्का मकान बन गया और खेत पर ट्यूबवेल लग गया।

श्रीराम काका भी और दूसरे लोग भी कहते हैं—"भगवान दे रहा है। अच्छे दिन आ गए।"

नवीं कक्षा का हेमंत अब तक किताबों को बोलता-चालता प्राणी मानता आया है। किताब में पढ़ी गई बात को वह बराबर समझता रहा है और उसका पालन करने की बराबर कोशिश करता रहा है।

पर किताबों की तमाम अच्छी बातों का जब उसे कहीं पालन होता नहीं दिखाई देता तो उसको आश्चर्य होता है। उसको बड़ा दुःख भी होता है कि ऐसा क्यों होता है।

सात से नौ हेमंत के पढ़ने का समय है। अब नौ ही बज रहे हैं। विचारों में डूब जाने के कारण वह कोई काम नहीं कर सका। बस सोचता ही रह गया।

नौ बजे रात काफी हो जाती है। नन्हीं शीला सो गई है। माँ चौके में उसके लिये खाना लिए बैठी है। नौ सवा नौ पर जब पिता जी आते हैं, तब पिता पुत्र दोनों खाना खाते हैं। माँ दोनों को साथ खाना परोसती है।

नौ बजे पिता जी के साथ खाना खाने की बात याद आते ही उसका ध्यान खुद अपने पिता जी पर चला गया। हेमंत के पिता जी रेल में कण्डक्टर हैं। वे मेल गाड़ी की थ्री टीयर बोगी में चलते हैं। लोगों की टिकटों का आरक्षण उनके हाथ में रहता है।

तीन दिन पहले वह भी अपने पिता जी के साथ थ्री टीयर बोगी में बैठा था। उसे टूंडला से वाराणसी आना था।

हेमंत ने देखा, टूंडला में दो लोग उसकी बोगी में चढ़े। उन्हें मुगलसराय जाना था। दोनों ने दस-दस रुपये दिए। पिता जी ने रुपये जेब में डाले और उन्हें बैठने दिया। गाड़ी चल दी।

जब गाड़ी इटावा में आई तो बड़ी भीड़ थी। टू टीयर, थ्री टीयर तथा प्रथम श्रेणी के डिब्बों के अलावा शायद चार पाँच डिब्बे और थे, जो साधारण यात्रियों के लिये थे। उनमें मिलिटरी भरी थी हेमंत ने देखा—लोग डिब्बा-डिब्बा छान रहे हैं। मिलिटरी वाले डिब्बों में साधारण यात्री जा नहीं रहे हैं। यदि वे कोशिश करते हैं तो घुसने नहीं दिया जाता। और दूसरे डिब्बों में बैठ नहीं सकते।

हेमंत बाहर आकर प्लेटफार्म पर खड़ा था और यात्रियों की परेशानी देख रहा था। उसी समय उसकी नजर पड़ी कुछ यात्रियों पर जो उसके पिता जी वाले थ्री टीयर डिब्बे में कहीं जगह न मिलने के कारण आ गए थे। उस समय उसके पिता जी डिब्बे में नहीं थे।

उसके डिब्बे में चढ़ने वाले यात्री गाँव के थे। उनके कपड़े मैले और फटे थे। एक आदमी रंग-बिरंगे कपड़े में बँधी एक डलिया लिए हुए था। शायद डलिया में शादी का पकवान था। लड़की की शादी हुई होगी या बहन की वह आदमी शादी या गौना में गई हुई लड़की या बहन को उसकी ससुराल से विदा कराकर ला रहा था। विश्वविद्यालय

में पढ़ाने वाले एक अध्यापक भी इस आशा से डिब्बे में आ गए थे कि आरक्षण हो जाएगा और आराम से जगह मिल जाएगी।

इसी समय उसके पिता जी आए। वे चीखते हुए बोले—" गेट आउट बाई द नेक्स्ट डोर" अर्थात् दूसरे दरवाजे से बाहर निकल जाओ। पर गाँव के लोग क्या समझें अंग्रेजी की बात। फिर जगह न मिलने की परेशानी। कैसे चले जाते। तब उसके पिता जी उन लोगों पर ऐसे टूटे जैसे भेड़िया बकरियों पर टूटता है। लगे लोगों को ढकेलने। डिब्बे में भबदड़ मच गई।

हेमंत यह दृश्य देखकर काँप उठा। उसके पिता जी ने एक आदमी को तो ऐसा ढकेला कि वह प्लेटफार्म पर आकर गिरा। विदाई के पकवान वाली डलिया भी उन्होंने प्लेटफार्म पर फेंक दी। अध्यापक महोदय को भी ऐसा डपटा कि वे बेचारे अपनी इज्जत लेकर तुरंत डिब्बे के बाहर आ गए।

दिमाग में जैसे कोई सुइयाँ चुभो रहा हो, वही उसके घर में भी हो रहा है। उसके पिता जी भी रोज रुपये लेकर आते हैं। माँ ऐसे रुपयों से डरती हैं। दादा भी कहा करते हैं—"बेटा, अपना वेतन ही लो। यह आदत मत डालो। बुरे धन से लड़कों की जिन्दगी बिगड़ेगी।" पर पिता जी किसी की बात नहीं सुनते। जब माँ ने एक बार कड़ा विरोध किया तो वे पिता जी से डाँट भी खा गई। अब माँ को विरोध करने की हिम्मत ही नहीं होती।

नौ बजा। सवा नौ बजा। हेमंत चौके में खाना खाने नहीं गया। उसके पिता जी आ गए। हाथ-पैर धोकर चौके में बैठ गए तब भी हेमंत नहीं गया। जब ज्यादा देर होने लगी तो उसकी माँ आईं—"बेटा चलो, खा लो। पिताजी कबके आ चुके हैं।"

हेमंत—"मैं खाना नहीं खाऊँगा।"

माँ—"क्यों?"

हेमंत—"भूख नहीं है।"

माँ—"भूख क्यों नहीं। छै बजे जलपान किया था। चल, उठ, जो भाए सो खा ले।"

हेमंत—"नहीं माँ, मैं बिलकुल नहीं खाऊँगा। तुम पिता जी को खिलाओ। मुझे नींद आ रही है।"

माँ ने बहुत कहा, पर हेमंत चौके में नहीं गया। उधर भूख से छटपटाते उसके पिता डाँट रहे थे—"नहीं खाता तो जाने दो। मनाने की जरूरत नहीं है। मुझे खाना दो। भूख लगी है।"

लाचार होकर माँ चली आई और चौके में बैठकर हेमंत के पिता जी को खाना खिलाने लगीं। खाना खाकर हेमंत के पिता जी सोने चले गए।

हेमंत भी बिना खाए लेट गया। उसकी माँ भी बिना खाए लेट गई। वे जान गई थीं कि कोई बात जरूर है।

जब ग्यारह बजा तो हेमंत को भूख को मजबूर कर दिया। उधर भूखी माँ भी नहीं सो पा रही थीं। अंत में माँ उठीं। हेमंत को उठाया। दुलारा-पुचकारा और चौके में जाकर दोनों ने खाना खाया।

पर माँ यह बात नहीं समझ सकीं कि तीन दिन पुरानी ट्रेन की बातों को लेकर हेमंत पिता जी से बहुत नाराज है, और उनके साथ खाना खाना तो दूर, उनके सामने आना तक पसंद नहीं करता।

और हेमंत के पिता जी तो इस बात को बिलकुल ही नहीं जान पाए कि हेमंत चौके में उनके साथ खाना खाने क्यों नहीं आया।

जानने वाला था सिर्फ हेमंत, जिसके मन में विचारों का तूफान उठा हुआ था।

□
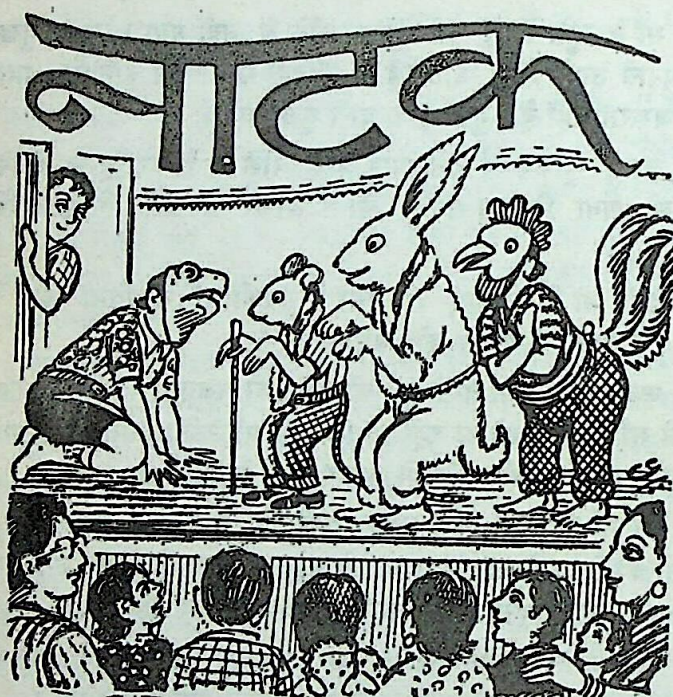
"आओ, नाटक खेलें।"

"आओ, नाटक खेलें।" जया की बात का मंजू ने मुँह चिढ़ाकर उत्तर दिया, "कभी नाटक खेला भी है।"

"खेला तो नहीं है। किन्तु कोशिश करनी चाहिए।" जया नम्र होकर बोली।

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं। हम लोग कोशिश तो करें। हो गया तो ठीक, नहीं हुआ तो कौन हम लोग बहुत बड़े अभिनेता हैं।" यह आवाज पप्पू की थी, जो दोनों की बातें सुन रहा था।

तब अजय, विजय, पप्पी, मुन्ना, सविता और पुष्पा—सब एक साथ कह उठे, "हम लोग जरूर नाटक खेलेंगे।"

"पर कौन-सा नाटक ?" मंजू ने अबकी सब को चिढ़ाते हुए पूछा: "वही स्कूल वाला 'हाथी आया' नाटक जो एकदम बोगस है।"

"नहीं, मंजू जी, इस बार हम लोग 'छोटा-सा घर' नाटक खेलेंगे। यह नाटक सबको अच्छा लगेगा।"

"अच्छा, पर खेलेंगे कैसे ? क्या खाट या चौकी पर नाटक होगा ? नाटक के लिए होता है एक स्टेज, जिसे रंगमंच कहते हैं। उसमें पर्दे होते हैं। एक बड़ा-सा पर्दा सामने होता है और कई पर्दे भीतर होते हैं। तब नाटक खेला जाता है।" मंजू ने ये सब बातें विस्तार से बताई।

"बात तो आप ठीक कह रही हैं, मंजू जी, लेकिन मेरी बात भी अब सुनिए।" पप्पू ने समझाते हुए कहा, "जिसे आप स्टेज कहती हैं, वह बहुत बड़ा भी हो सकता है और छोटा भी। हम लोगों का बनाया हुआ स्टेज भी हो सकता है।"

"हम लोगों का बनाया हुआ ? यानी नाटक के लिए हम लोग खुद स्टेज बना सकते हैं।" मंचू ने आश्चर्य करते हुए कहा।

"क्यों नहीं। पप्पू ने बताया है कि 'छोटा-सा घर' नाटक के बारे में उसने सब कुछ सोच लिया है। उसके घर में छोटे-छोटे बाँस रखे हैं। इन्हीं को वह आँगन में गाड़ देगा। इस काम में उसके बड़े भाई उसकी मदद करेंगे। वे नाटक के बारे में भी जानते हैं। बराबर नाटक कराते रहते हैं। नाटक के रिहर्सल में भी वें हमारी मदद करेंगे।" जया ने समझाते हुए कहा।

"यह तो बहुत अच्छा होगा।" अब मंजू समझ गई कि पप्पू सोच-समझ कर बात कर रहा है। पप्पू होशियार लड़का है, यह तो पहले ही जानती थी, पर नाटक में उसकी इतनी रुचि है, यह नहीं जानती थी। इसलिए उसने भी गम्भीर होकर कहा, "पर, पप्पू भैया, पर्दे कहाँ से आएँगे ?"

पर्दे धोतियों से बन जाएँगे, पप्पू ने फिर समझाया। "पुराती धोतियों को रंग कर पर्दे बना लिए जाएँगे। मैंने जो नाटक चुना है, वह पशु-पक्षियों का है। हम लोगों को ही पशु-पक्षी बनना है। इसके लिए मुखौटों की जरूरत पड़ेगी। मेरी दीदी चित्रकार है, वे मुखौटे बना देंगी। पात्रों का मेकअप भी वे कर देंगी।"

पप्पू की बात सुनकर सबको प्रसन्नता हुई। अब तक सब ने नाटक देखा ही था, अब सबको नाटक करने को भी मिलेगा।

"नाटक कहाँ है ?" सब ने एक साथ पूछा।

पात्र आते गए। नाटक तेज होता गया। देखने वाले बड़े और बच्चे चुपचाप नाटक देख रहे थे। सब नाटक देख कर खुश हो रहे थे।

नाटक में बने घर के लिए मेंढक, मुर्गा, खरगोश, चूहा और साही में तथा लोमड़ी, भेड़िया और भालू में—इन दो दलों में लड़ाई हुई। अन्त में शैतान भालू, भेड़िया और लोमड़ी हार गए और जंगल छोड़कर भाग गए। घर पर मेंढक, खरगोश, मुर्गा, साही और चूहा—इन भले साथियों का अधिकार हो गया।

इस खुशी में मेंढ़क और उसके साथियों ने मिल कर गीत गाया और नाचे।

यहीं नाटक खत्म हो गया।

सभी ने जोरों से तालियाँ बजाई। देखने वालों ने पात्रों को इनाम दिए।

जब नाटक खत्म हो गया तो सभी पात्र मंच पर आए। उन्होंने दर्शकों को हाथ जोड़े। बच्चों का अभिनय देखकर सभी लोग बड़े खुश थे।

पप्पू की माँ ने उस दिन सबको दावत दी और पप्पू की तो सभी बड़ाई कर रहे थे।

अब ये बच्चे आगे जो नाटक खेलेंगे उसका नाम है, "नीला घोड़ा।" बाल मध्य के बच्चे नाटक के साथ दूसरे कार्यक्रम भी देंगे।
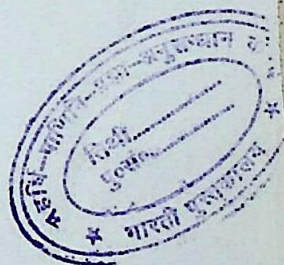
चर्चित बयान

- बुआ-बबुआ मिलकर जितने साल सीएम नहीं रहे उससे ज्यादा समय मैं गुजरात का सीएम रहा : नरेंद्र मोदी
- सबसे बड़ा अभिनेता पीएम बन गया। इससे तो अच्छा होता अमिताभ बच्चन को ही पीएम बना देते : प्रियंका गांधी
- मोदी सपा-बसपा पर दबाव डाल सकते हैं, मुझ पर नहीं है। मोदी से मैं नहीं ... : राहुल गांधी
- सपा-बसपा-रालोद का गठबंधन महामिलावटी नहीं बल्कि सामाजिक महापरिवर्तन का गठबंधन है : मायावती
- हमें कोई भी नियंत्रित नहीं करता है। गठबंधन यूपी में सत्ताधारी दल को कड़ी चुनौती दे रहा है : अखिलेश

सैनिकों को बुलटप्रूफ जैकेट चाहिए। जबकि शेष बयानों की काट बसपा प्रमुख मायावती ने अपने भाषण में दी। उन्होंने कहा हमारा गठबंधन महामिलावटी नहीं बल्कि सामाजिक महापरिवर्तन का गठबंधन है। बहन बेटियों के सम्मान में खड़े रहने के मोदी के बयान पर मायावती ने कहा कि जो अपनी पत्नी का सम्मान नहीं कर सका वह दूसरों की बहन-बेटियों का सम्मान क्या करेगा। इससे पहले चार मई को प्रतापगढ़ की रैली में नरेंद्र मोदी ने कहा था कि पूर्वांचल पर आतंकी हमलों के दौरान देश की सत्ता संभालने वालों ने क्यों नहीं आतंकवाद का मुकाबला किया। उनके इस बयान का जवाब प्रियंका गांधी ने पिछले मिर्जापुर की रैली में दिया। प्रियंका गांधी ने कहा मोदी आतंकवाद से लड़ने का दिखावा कर रहे हैं। मोदी नेता नहीं अभिनेता हैं। दुनिया का सबसे बड़ा अभिनेता प्रधानमंत्री बन गया। इससे तो अच्छा होता अमिताभ बच्चन को ही प्रधानमंत्री बना देते। नौ मई को बाराबंकी की जनसभा में राहुल गांधी ने कहा था कि बसपा अध्यक्ष मायावती और सपा प्रमुख अखिलेश यादव के रिमोट कंट्रोल की चाबी नरेंद्र मोदी के पास है। सपा-बसपा पर नरेंद्र मोदी दबाव डाल सकते हैं लेकिन मुझ पर नहीं है।

तैयारी: क...

वाराणसी | प्रमुख संवाददाता

लोकसभा चुनाव के सातवें और ... चरण के मतदान से एक दिन पू... बसपा-रालोद गठबंधन के पदा... और कार्यकर्ता अपनी-अपनी ... में व्यस्त रहे। गठबंधन के ... कार्यकर्ताओं की बूथ कमेटि... पदाधिकारियों के बीच पोलिंग... वितरण पूरे दिन किया गया।

देशभर में अब तक छह चरणों के चुनाव में सर्वाधिक मतदान वाले संसदी...

काशी को मतदान के शिखर पर प...

उत्साह

वाराणसी | अमित वर्मा

अध्यात्म को समेटे सांस्कृतिक पुरातन नगरी काशी के पास इस आम चुनाव में नया कीर्तिमान गढ़ने का मौका है। मतदान के उच्च पटल पर काशी को विराजने का जिम्मा यहां के सुधी मतदाताओं का है। अब तक के छह चरणों के चुनाव में देश में सर्वाधिक मतदान वाले संसदीय क्षेत्रों का रिकार्ड तोड़ने का मौका है। हर एक मतदाता की जागरूकता वाराणसी संसदीय क्षेत्र को इस चुनाव में नंबर वन बना ...

मतदान प्रतिशत बढ़ता तो कुछ और होते परिणाम

मतदान फीसदी कम होने से परिणाम पर भी असर पड़ता है। केवल वाराणसी संसदीय क्षेत्र पर अब तक के परिणाम पर नजर डालें तो सबसे कम जीत का प्रतिशत 2.58 रहा। जबकि जीत का सबसे ज्यादा प्रतिशत 43.80 रहा। नजदीकी अंतर वाले जीत-हार में मतदान प्रतिशत काफी अहमियत रखता है।

अब तक वाराणसी सीट पर कम अंतर से आये परिणाम

चुनाव वर्ष	जीत के अंतर का प्रतिशत	जीतने वाला प्रत्याशी
1967	6.45	एसएन सिंह-सीपीएम
1980	7.07	कमलापति त्रिपाठी- कांग्रेस
1991	8.92	शीशचंद्र दीक्षित-भाजपा
1996	7.90	शंकरप्रसाद जायसवाल- भाज...
2009	2.58	डॉ. मुरली मनोहर जोशी- भा...

को प्रथम स्थान पर लाने के लिए। वाराणसी अब तक दो बार ही 60 के ...

प्रतिशत महज दो बार ही ... जा पाया है। ऐसे में काश...